नवंबर–2020
वर्ष-84 | अंक-11 | ₹-19 प्रति | ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

18 याचक नहीं, उपासक बनें
23 ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः
34 साधना के स्वर्णिम सूत्र
53 वृक्ष—ध्यान-साधना के मूक प्रेरक

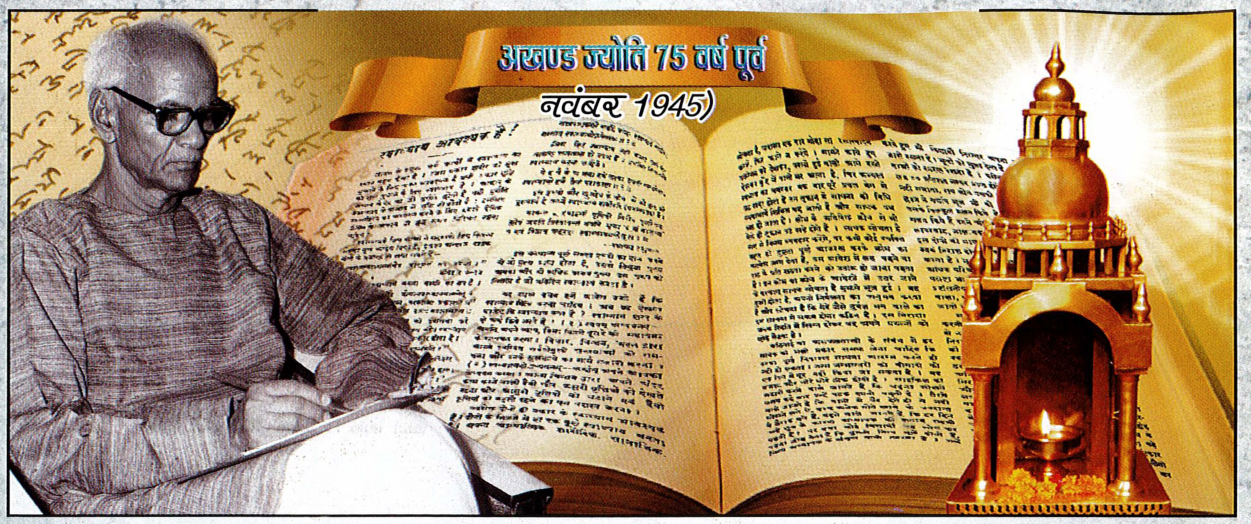

सत्यता में अकूत बल भरा हुआ है।

"आप सदा सत्य बोलिए, अपने विचारों को सत्यता से परिपूर्ण बनाइए और आचरण में सत्यता बरतिए। अपने आप को सत्यता से सराबोर रखिए, ऐसा करने से आपको एक ऐसा प्रचंड बल प्राप्त होगा, जो संसार के समस्त बलों से अधिक होगा। कनफ्यूशियस कहा करते थे कि सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल है। परंतु वस्तुतः सत्य में अपार बल है। उसकी समता भौतिक सृष्टि के किसी बल के साथ नहीं की जा सकती।

जो अपनी आत्मा के सामने सच्चा है। जो अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है। बनावट, धोखेबाजी, चालाकी को तिलांजलि देकर जिसने ईमानदारी को अपनी नीति बना लिया है, वह इस दुनिया का सबसे बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति है। क्योंकि सदाचरण के कारण मनुष्य शक्ति का पुंज बन जाता है। उसे कोई डरा नहीं सकता, उसे किसी का डर नहीं लगता, जबकि झूठे और मिथ्याचारी लोगों का कलेजा बात-बात में सशंकित रहता है और पीपल के पत्ते की तरह काँपता रहता है।

धनबल, जनबल, तनबल, मनबल आदि अनेकों प्रकार के बल इस संसार में होते हैं, परंतु सत्य का बल सबसे अधिक है। सच्चा पुरुष इतना शक्तिशाली होता है कि उसके आगे मनुष्यों को ही नहीं, देवताओं को ही नहीं—परमात्मा को भी झुकना पड़ता है।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

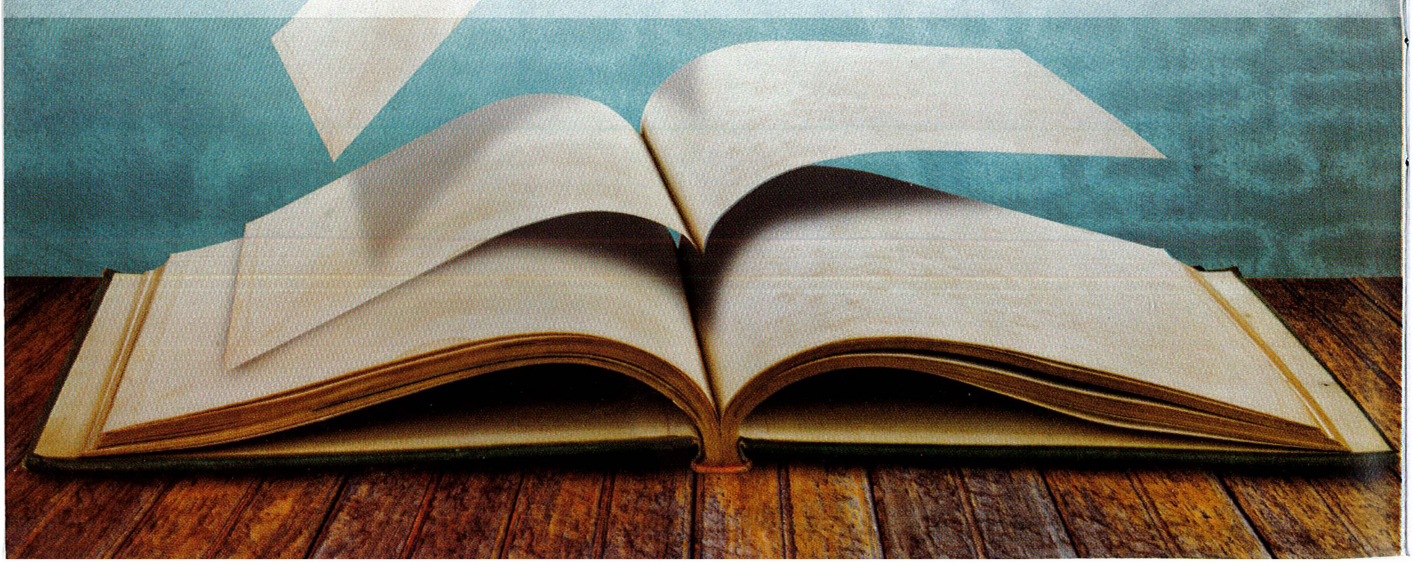

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा, 281003
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 84
अंक	: 11
नवंबर	: 2020
कार्तिक	: 2077
प्रकाशन तिथि	: 01.10.2020

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

दुःख

वेदांत दर्शन में संसार को स्वप्नवत् माना गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी इसे एक प्रपंच मानते हैं तो भगवान बुद्ध संसार को दुःखों का मूल ठहराते हैं। यह सत्य है कि संसार में आपत्तियों व कष्टों-कठिनाइयों की कमी नहीं है एवं न चाहते हुए भी मनुष्य का जीवन दुरूह समस्याओं से घिरा हुआ नजर आता है। मनुष्य प्रयत्न सुख को पाने का करता है, पर घिर दुःख से जाता है। कामना सुविधाओं की होती है, पर मिलती है अशांति। चाहा वैभव जाता है, पर मिलती है अतृप्ति। इन्हीं कामनाओं, वासनाओं, आकांक्षाओं की तृप्ति के लिए जीवनभर दौड़ते रहना ही कइयों की नियति बन जाता है। इसी प्रयत्न में सारा जीवन बीत जाता है। जब पीछे मुड़कर देखते हैं तो पश्चात्ताप होता है कि इस जीवन को व्यर्थ की भाग-दौड़ में यों ही गँवा दिया।

प्रश्न उठता है कि दुःख है क्या? अतृप्त कामनाएँ ही दुःख कही जा सकती हैं। संसार को न समझ पाने के कारण मन में उपजी भ्रांति, माया का रूप ले लेती है और मानसिक उद्विग्नता परिणाम के रूप में हमारा पीछा जीवन के हर मोड़ पर करती नजर आती है। संसार को हम अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं; जबकि संसार किसी के सँभाले, सँभल नहीं सकता। शांति व तृप्ति मानसिकता व दृष्टिकोण को बदलने से मिलती हैं, परिस्थितियाँ बदलने से नहीं। मन में उभरा अज्ञान, उपजी भ्रांति कि हम परिस्थितियों को अपने अनुरूप कर सकते हैं, संसार को बदल सकते हैं, मनोनुकूल कर सकते हैं—हमें दुःख के अतिरिक्त और कोई परिणाम नहीं देते।

मन को बदल लेना ही इस समस्या का स्थायी समाधान है। यही ज्ञान का मार्ग है। योगवासिष्ठ में उदाहरण आता है कि जिस प्रकार भीगी हुई लकड़ियाँ आग को नहीं जला सकतीं, उसी प्रकार ज्ञान से सिक्त, आत्मज्ञान से भीगे हुए, नहाए हुए ज्ञानीजनों को मानसिक वेदना पीड़ित नहीं करती। जो ज्ञान की इस नौका पर सवार हो जाता है, वह संसार-सागर को चीरकर पार करता चला जाता है। दुःख से घिरे इस संसार से उबरने का यही आनंदमय मार्ग है। ❑

विषय सूची

- दुःख 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  बाहर की दौड़ में
  जीवन का उद्देश्य न भूल बैठें हम 5
- अशांति के कारण एवं उनके निवारण 8
- ध्रुव-सी निश्चल भक्ति से मिलते हैं भगवान 10
- **पर्व विशेष**
  प्रकाश पर्व दीपावली 13
- उद्देश्यपूर्ण कर्म करें
  सफलता सुनिश्चित होगी 16
- याचक नहीं, उपासक बनें 18
- चंद्रमा का ज्योतिषीय महत्त्व 21
- ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः 23
- निर्भयता 27
- अटल और अकाट्य है कर्मफल विधान 28
- परमात्मा सदृश है गुरु 30
- योगासनों से समग्र लाभ लें 32
- साधना के स्वर्णिम सूत्र 34
- **चेतना की शिखर यात्रा—218**
  राजनीति से हटकर 38
- व्यक्तित्व विकास का साधन है आत्ममूल्यांकन 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—139**
  प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण का मूल्यांकन 43
- आपत्तियों का सामना करें
  धैर्य एवं साहस के साथ 46
- भोजन का परिरक्षण 48
- **युगगीता—246**
  दंभी, अभिमानी, क्रोधी व कठोर
  होते हैं आसुरी व्यक्तित्व 51
- वृक्ष—ध्यान-साधना के मूक प्रेरक 53
- मूल्यों और मुद्दों पर आधारित विकास 55
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  गायत्री की पंचकोशी साधना 57
  (गतांक से आगे)
- **विश्वविद्यालय परिसर से—185**
  वैश्विक संकट में
  नई उपलब्धियाँ रचता विश्वविद्यालय 63
- **अपनों से अपनी बात**
  इस कुत्सित आकांक्षा से दूर रहें लोकसेवी 64
- नमन हमारा (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

सदाशिव मृत्युंजय के सान्निध्य में एक योगी साधक

नवंबर-दिसंबर, 2020 के पर्व-त्योहार

बुधवार	04 नवंबर	करवा चौथ
रविवार	08 नवंबर	अहोई अष्टमी
बुधवार	11 नवंबर	रमा एकादशी
गुरुवार	12 नवंबर	धनतेरस
शनिवार	14 नवंबर	रूप चतुर्दशी/ दीपावली/ बाल दिवस
रविवार	15 नवंबर	अन्नकूट
सोमवार	16 नवंबर	भाईदूज/ बेसतुबरस
शुक्रवार	20 नवंबर	सूर्य षष्ठी
बुधवार	25 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी
सोमवार	30 नवंबर	गुरुनानक जयंती
शुक्रवार	11 दिसंबर	उत्पत्ति एकादशी
सोमवार	14 दिसंबर	सोमवती अमावस्या
रविवार	20 दिसंबर	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	25 दिसंबर	गीता जयंती/ क्रिसमस/ मोक्षदा एकादशी
मंगलवार	29 दिसंबर	पूर्णिमा/ दत्तात्रेय जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

बाहर की दौड़ में जीवन का उद्देश्य न भूल बैठें हम

मानवीय स्वभाव है कि हम आँकड़ों के स्थान पर घटनाक्रमों की भाषा को बेहतर समझते हैं। इसीलिए बच्चों को गणित के स्थान पर कहानियाँ सिखा-समझा पाना ज्यादा आसान होता है। इन्हीं में से कुछ कहानियाँ आगे चलकर सिद्धांतों का रूप ले लेती हैं, सिद्धांत धीरे-धीरे योजनाओं में बदल जाते हैं और एक दिन वो योजनाएँ भी कार्यरूप में परिणत हो जाती हैं। यदि विगत सदी के समस्त घटनाक्रमों को एक दार्शनिक दृष्टि से नजर दौड़ा कर देखें तो हम पाएँगे कि विगत सदी में मानवता के सम्मुख मूलरूपेण तीन तरह की कहानियाँ आई हैं। इन्हीं कहानियों को हम तीन सिद्धांत या तीन मान्यताओं के नाम से भी पुकार सकते हैं।

इनमें से पहली मान्यता कट्टरपंथी सोच के रूप में थी; जिसे विश्वभर में नाजीवाद या फासिज्म के नाम से जाना जाता है। पिछली सदी के शुरुआती वर्षों में लगभग हर राष्ट्र इसी चिंतन के आगोश में साँसें लेता दिखाई पड़ता था। जर्मनी, इटली, जापान की इस कट्टरपंथी मान्यता को द्वितीय विश्वयुद्ध ने लगभग पूर्णरूपेण नकार दिया। हिटलर को आत्महत्या करनी पड़ी, मुसोलिनी मारा गया एवं जापान को हिरोशिमा व नागासाकी जैसे लोमहर्षक कांडों का साक्षी बनना पड़ा।

स्पष्ट था कि वैश्विक समुदाय नाजीवाद या फासिज्म से स्वयं को दूर रखना चाहता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संपूर्ण विश्व, दो प्रकार की सोचों या मान्यताओं में तब्दील हो गया। पहली मान्यता मार्क्सवाद या कम्युनिज्म की थी। रूस, चीन, उत्तरी कोरिया से लेकर आधी दुनिया उस सोच को मानती दिखी और दूसरी मान्यता, उदारवादी सोच या लिबरलिज्म की थी, अमेरिका, यूरोप से लेकर अनेक देश इस मान्यता को अपनाते दिखे।

हर सिद्धांत एक दिन नई सोच से चुनौती पाता है। सोवियत संघ के विघटन एवं जर्मनी की दीवार के गिरने के साथ ही कम्युनिज्म की नींव भी कँपकँपायी तो वहीं वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए आतंकवादी हमले ने एवं सन् 2008 में अत्यंत उदारपंथी सोच के कारण आए वैश्विक अर्थ-संकट ने लोगों का विश्वास लिबरलिज्म से भी हटा दिया।

आज संपूर्ण समाज एक भ्रम और भ्रांति के कगार पर खड़ा प्रतीत होता है, इसीलिए जहाँ अमेरिका में आव्रजन या इमीग्रेशन को रोकने के लिए कट्टरपंथी सोच पनपती दिखाई पड़ती है तो वहीं यूनाइटेड किंगडम ने स्वयं को यूरोपियन यूनियन से बाहर निकालने के लिए वोट करके एक अत्यंत दुविधापूर्ण परिस्थिति स्थापित कर दी है।

सारांश में कहें तो द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले मनुष्य जाति के पास तीन विकल्प थे, सोवियत संघ के विघटन से पहले दो, अर्थ-संकट आने से पहले एक और आज की तारीख में विकल्पशून्यता की स्थिति है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ त्रासदीपूर्ण घटनाक्रमों को, दुविधा को, भ्रम को, तनाव को और संघर्ष को जन्म देती हैं—जैसा आज कदम-कदम पर होता दिखाई पड़ता है।

आज की परिस्थितियों में वैश्विक सर्वसम्मति के अभाव के अतिरिक्त जो एक और चुनौती वैश्विक पटल पर उभरती नजर आती है, वो चुनौती तकनीकी के तीव्रतम विकास की है। जिस तेजी के साथ विगत दिनों कंप्यूटर, डिजिटल वर्ल्ड, इंटरनेट इत्यादि की उपस्थिति हमारी दैनिक दिनचर्या में स्थान बनाकर बैठ गई है, उसका अनुमान लगा पाना भी आज से 50 वर्ष पूर्व तनिक भी संभव न था।

मजेदार बात यह है कि हमारे जीवन में ज्यादातर आते परिवर्तनों के लिए हमें हमारा मत व्यक्त करने का अधिकार मिला हुआ है। हम कौन-सी सरकार चाहते हैं, बैंक कौन-सा उपयुक्त रहेगा से लेकर ट्रेन की बोगी चुनने का अधिकार हमारे पास है, परंतु इंटरनेट पर आते गेम्स से लेकर खरीदारी की व्यवस्था तक में हमारा योगदान शून्य के करीब है। क्या हमने इंटरनेट के लिए वोट डाले थे? क्या प्रत्येक वर्ष बाजार में आ जाने वाले स्मार्ट फोन की शृंखला हमसे पूछकर आती है?

तकनीकी की यह क्रांति, जो आज मानवीय समुदाय पर अपना प्रभुत्व स्थापित करती दिखाई पड़ती है, इसके

परिणाम अभी ही हमारी आँखों के सामने हैं। कंप्यूटर एल्गोरिद्म के कारण अर्थशास्त्र पहले ही इतना जटिल हो गया है कि आज हर व्यक्ति के लिए उसे समझ पाना संभव नहीं है। क्रिप्टोकरेंसी, बिटकॉइन, ब्लॉकचेन इत्यादि के आ जाने से धीरे-धीरे जब कैश या नकदी मुद्रा पूर्णरूपेण समाप्त हो चलेगी तब मुद्रा कर लगाना लगभग अप्रासंगिक हो जाएगा और ऐसे में राजनीतिक दृष्टि से यह सोचना जरूरी हो जाएगा कि वे अपने कोष के संग्रह के लिए किन मार्गों को तलाशें।

इसके साथ जो एक और चुनौती है, वो मानवीय उद्देश्य को लेकर उभरी है। धीरे-धीरे विश्व के लगभग हर पहलू एवं आयाम पर हमारा अधिकार एवं नियंत्रण स्थापित होता जा रहा है, परंतु क्या हम अपने मन पर नियंत्रण स्थापित कर पाए हैं? बाहर के जगत् पर आधिपत्य तो हम करते दिखाई पड़ते हैं, पर आत्मिक जगत् पर हमारा नियंत्रण न के बराबर है। हम नदियाँ रोकना व बाँध बनाना जानते हैं, पर मन, भावनाओं व विचारों पर हमारा नियंत्रण लगभग न के बराबर रहा है। बायोटेक व इंफोटेक की क्रांति, जो विगत दिनों घटी हैं, जब वे हमें हमारे आंतरिक जगत् का प्रभुत्व प्रदान करने लगेंगी तब क्या होगा यह प्रश्न विचारणीय है।

उदाहरण के तौर पर जब औद्योगिकीकरण हुआ, तब हम उन्माद की उस दौड़ में कूद पड़े और जब तक हम यह जान पाते कि वैसा करने से पर्यावरण बुरी तरह असंतुलित हो जाएगा; तब तक बहुत देर हो चुकी थी। विगत सदी की तीन महत्त्वपूर्ण मान्यताओं के अंत के बाद तकनीकीकरण, इस सदी के मुख्य किरदार की भूमिका में उभरा है और इसका परिणाम क्या होगा यह जान पाना अभी हमारे लिए संभव नहीं, परंतु जो परिवर्तन आज की तारीख में दिख रहे हैं, उन्हें शुभ संकेत नहीं कहा जा सकता है।

ऐसा इसलिए कि इंफोटेक और बायोटेक की क्रांतियाँ ऐसे लोगों के द्वारा लाई जा रही हैं, जो न तो उनकी खोजों के राजनीतिक परिणामों के प्रति सचेत हैं और न ही वे किसी देश और वर्ग की सोच का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पड़ते हैं। इसलिए धीरे-धीरे जो एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहा है, वह यह कि एक आम इनसान अपने आप को इन क्रांतियों के संदर्भ में अप्रासंगिक मानने लगा है। चाहे सोच नाजीवाद की रही हो या समाजवाद की, पूँजीवाद की रही हो या उदारवाद की—इनमें से प्रत्येक सोच के पीछे कम-से-कम वैयक्तिक प्रतिनिधित्व का भाव तो था। व्यक्ति को यह लगता था कि इन सोचों को, इन सिद्धांतों को कार्यरूप में परिणत करने में उसकी कुछ भूमिका तो है, पर आज जेनेटिक इंजीनियरिंग, आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस, ब्लॉकचेन, क्रिप्टोकॉइन जैसे नामों के बीच में एक आम आदमी अपने परिचय को मोहताज नजर आता है।

यह संभव है कि जिस तरह से औद्योगिकीकरण ने मानवीय चिंतन, आचरण व वैश्विक क्रम को एक नई सोच प्रदान की है, वैसे ही ये अभिनव परिवर्तन भी कुछ नया रूप मानवता को प्रदान करें, पर प्रश्न यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि क्या व कौन-सा रूप? बदलते तकनीकी दौर में राजनीति का स्वरूप क्या होगा? इसमें धर्म व अध्यात्म की भूमिका क्या होगी, यह जानने को हर कोई बेताब नजर आता है। आर्टीफिशियल इंटेलिजेंस के बढ़ने से रोजगार पर मँडराती काली घटाएँ किसी से छिपी नहीं हैं। औद्योगिकीकरण ने मानवीय श्रम का स्थान लिया था, पर नई तकनीकी क्रांति धीरे-धीरे मानवीय चिंतन का नियंत्रण अपने हाथ में लेती दिखाई पड़ती है।

इन परिवर्तनों के अनेकों परिणाम, मानवीय सभ्यता में अनेकों आयामों में देखने को मिलते हैं। बेरोजगारी से लेकर सुरक्षा-व्यवस्था तक अनेकों ऐसे पहलू हैं, जिन्हें इस नए परिप्रेक्ष्य में पुन: अपनी आवश्यकता व अपने अस्तित्व को परिभाषित करना होगा, परंतु जो सबसे चुनौतीपूर्ण तथ्य है वो यह कि यदि मनुष्य की सारी आवश्यकताएँ मशीनें पूरी कर देंगी, आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस के द्वारा हमारी बुद्धि द्वारा संपन्न कार्य भी कंप्यूटर पूरा कर लिया करेंगे, तब मानवीय जीवन का उद्देश्य कहीं और तो नहीं भटक जाएगा? सभी के मोबाइल में हजारों नंबर सुरक्षित हो जाने से आज लोग अपने घर का नंबर भी याद रखना भूल गए हैं। जीवन की सारी आवश्यकताएँ मशीनों द्वारा पूरी कर दिए जाने पर कहीं हम अपना मूलभूत प्रश्न, अपनी जीवनयात्रा का केंद्रीय लक्ष्य ही भूल तो नहीं जाएँगे?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो आज सभी गंभीर चिंतकों को चिंतित करते एवं सोचने को मजबूर करते दिखाई पड़ते हैं। सच पूछा जाए तो इन चुनौतीपूर्ण समस्याओं का समाधान बाहर नहीं, भीतर है। वर्षों की भाग-दौड़ ने इनसान को

इतना तो सिखाया ही है कि जीवन में स्थिरता व शांति बाहर की समृद्धि से नहीं, बल्कि भीतर के संतोष से आती है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को यह ही तो कहते हैं कि '**अशांतस्य कुतो सुखम्**'—अर्थात अशांत व्यक्ति को सुख कैसे मिलेगा?

इस एक सूत्र में ही आज विकल्पों को तलाशती मानवता के लिए प्रगति के मार्ग खुले पड़े हैं। यदि बाहर के नित नूतन संसाधनों की दौड़ में पड़ने के स्थान पर आत्मिक शांति के लिए प्रयास किए गए होते तो विगत सदी की तीनों मान्यताएँ भी मनुष्य के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण धरोहर छोड़कर जातीं। आज जब हम एक और क्रांति को अपनी आँखों के सामने घटता पाते हैं तो इन पुराने अनुभवों से सीख लेने की आवश्यकता है।

जीवन में शांति व सुकून के लिए बाहरी ताम-झाम नहीं, बल्कि जीवनोद्देश्य की स्पष्टता जरूरी हो जाती है। इस सूत्र को ध्यान में रखकर होने वाली कोई भी क्रांति मानवता के लिए एक महत्त्वपूर्ण पायदान सिद्ध हो पाती है। आवश्यकता मात्र इसके सम्यक दिशा निर्धारण की है। आज कुछ ऐसा ही करने की सोच व सीख वर्तमान परिस्थितियाँ हमें देती नजर आती हैं। ❑

जेतवन में एक किसान रहा करता था। वह भीषण गरमी में भी अपने खेतों में काम करता रहता। भगवान बुद्ध प्रातःभ्रमण करते हुए उधर से निकलते तो किसान विनम्रता से उन्हें प्रणाम करता। बुद्ध उसकी विनम्रता व सात्त्विकता से अत्यंत प्रभावित हुए।

प्रायः प्रतिदिन वे वहीं रुककर उसे उपदेश देने लगे। कुछ दिनों बाद जब किसान की फसल पककर तैयार हुई तो उसके मन में ऐसा विचार आया कि भगवान बुद्ध के उपदेश से उसे बहुत शांति मिली है, इसलिए वह अपनी फसल का चौथाई भाग भगवान बुद्ध को सादर भेंट करेगा। उसी रात अचानक तेज बारिश आई और सारी फसल बह गई। किसान ने यह देखा तो शोक में डूब गया।

दूसरे दिन जब बुद्ध वहाँ पहुँचे तो शोकग्रस्त किसान उन्हें देखकर रो पड़ा और बोला—"मुनिवर! मैं अपनी फसल के नष्ट हो जाने से शोकाकुल नहीं हूँ, वरन मुझे इस बात का दुःख है कि मैंने फसल का चौथाई भाग आपको देने का संकल्प किया था और आज उस संकल्प की पूर्ति नहीं हो पाई।"

बुद्ध बोले—"वत्स! तुमने सत्संकल्प करके ही पुण्य अर्जित कर लिया है। मैं तो वैसे भी अन्न या धन का संग्रह नहीं करता। प्राकृतिक आपदा में धैर्य न खोना ही कल्याण का मार्ग है। निष्काम कर्म इसी को कहते हैं।" यह सुनकर किसान शोकरहित हो गया।

अशांति के कारण एवं उनके निवारण

हर व्यक्ति जीवन में सुख-शांति चाहता है, लेकिन ये बहुत ही कम लोगों को नसीब हो पाते हैं। इसके कारणों पर विचार कर हम इसका बहुत सीमा तक निदान कर सकते हैं और सुखी एवं संतुष्ट जीवन की ओर कदम बढ़ा सकते हैं।

दूसरों से बढ़ी-चढ़ी आशा व अपेक्षाएँ दु:ख का बड़ा कारण बनती हैं। जब कोई अपनी आशा के अनुकूल नहीं निकलता तो एक झटका-सा लगता है, मोहभंग की स्थिति आ जाती है तथा चित्त विक्षुब्ध हो जाता है। समझ आता है कि किसी से भी अत्यधिक आशा-अपेक्षा नहीं लगाकर रखनी थी। ऐसा प्राय: अधिक राग एवं आसक्ति के कारण होता है।

हम जल्दबाजी में या जीवन के उथले प्रवाह में या अनुभवहीनता के कारण किसी व्यक्ति का सम्यक मूल्यांकन नहीं कर पाते या तो उसे देवता मान बैठते हैं और उसकी पूजा करते हैं या सीधा शैतान मानकर उसके साथ परित्यक्त-सा व्यवहार करते हैं; जबकि हर इनसान इन सबका एक मिश्रण होता है, उसकी अपनी विशेषताएँ होती हैं, साथ ही अपनी मानवीय सीमाएँ भी। यह समझ हमें व्यक्ति से अनावश्यक आशा-अपेक्षा करने से बचाती है और आगे चलकर दु:खी होने से रोकती है।

इंद्रिय सुखों में जीवन के अर्थ की तलाश भी दु:ख का एक बड़ा कारण बनती है। इंद्रियों के विषय-सुख तो एक ऐसी आग की तरह होते हैं कि इसमें जितना ईंधन डालते जाओ, वह उतना ही अधिक धधकती जाती है और कभी शांत नहीं होती। इसमें अपना सारा तन, मन, प्राण, ईमान, धर्म और जीवन को भी स्वाहा कर दिया जाए, तो भी यह तृप्त होने वाली नहीं। अंत में बचता है जर्जर-रोगी शरीर, कुसंस्कारी-बिगड़ैल मन, विक्षुब्ध चित्त और भारी पश्चात्ताप से भरा अंत:करण।

इसके विपरीत समझदारों की रीति-नीति दूसरी होती है, वे संयम एवं सदाचारपूर्ण जीवन जीते हैं, एक अनुशासित एवं संतुलित दिनचर्या का अनुसरण करते हैं और परिणामस्वरूप एक स्वस्थ, निरोगी एवं सुखी जीवन जीते हैं। शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करते हैं।

धन को ही सब कुछ मान बैठने वाले भी कभी सुख-चैन से नहीं बैठ पाते हैं। एक तो इसको कमाने में ही वे अपने जीवन का बहुत कुछ दाँव पर लगा बैठे होते हैं, जो उनके जीवन को असंतुलन प्रदान करता है और इसलिए उनका मन हमेशा ही एक तनाव की स्थिति को लिए होता है।

धन-अर्जन कर भी लिया तो फिर इसकी साज-सँभाल और वृद्धि को लेकर चिंताएँ सताती रहती हैं। परिवार में जब वे अपने बच्चों को समय ही नहीं दे पाते तो ऐसे में उनमें संस्कारों के रोपण का हिस्सा प्राय: उपेक्षित ही रह जाता है। ऐसे में वे आगे चलकर अर्जित संपदा के साथ क्या गुल खिलाएँगे—यह चिंता धन के लोभी के सिर को घुन की तरह हमेशा खाए रहती है।

इस पर यदि किसी भी कीमत पर धन-अर्जन का भूत सवार हो जाए, तो फिर भ्रष्टाचार की दलदल में धँसते देर नहीं लगती है। भ्रष्टाचार उजागर न हो इसका भय अलग से तलवार की तरह सिर पर लटका रहता है और अंतत: जीवन का सार तत्त्व हाथ से फिसलते देख, दु:ख और पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ नहीं बचता। इसीलिए शास्त्रों में **'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'** का सूत्र दिया गया था अर्थात त्यागपूर्ण भोग करो, सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से बाँटो और ईमानदारीपूर्वक जितना अर्जन होता है, उसमें संतुष्ट रहो; क्योंकि जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ बहुत सीमित हैं, इनके लिए व्यक्ति को अपनी सुख-शांति को दाँव पर लगाकर धनकुवेर बनने की आवश्यकता नहीं।

किसी भी कीमत पर नाम कमाने की चाह और अपनी उपस्थिति दर्ज करने की हवस भी मनुष्य के लिए दु:ख का कारण बनते हैं। ऐसे में व्यक्ति ओछे एवं हास्यास्पद हथकंडे अपनाता है, जिनको देख व्यक्ति दूसरों की नजर में तो गिरता ही है, अपनी अंतरात्मा से भी कटता जाता है। ऐसे में चापलूसों का जमावड़ा भी धीरे-धीरे एकत्र होता जाता है, जो चापलूसी की आड़ में अपना उल्लू सीधा कर रहे होते हैं।

ऐसे में दूसरों को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति लोगों के स्वभाव का अंग बनती जाती है। दिन-रात व्यक्ति अपने अहं की पुष्टि-तुष्टि एवं प्रतिद्वंद्वी को नीचा दिखाने की तिकड़म में ही उलझा रहता है। उसके दिन का चैन और रात की नींद नदारद हो जाते हैं; जबकि समझदारी भरा कदम होता कि व्यक्ति जो है, जैसा है, वैसा ही रहे। जीवन में मिली अमानतों का आनंद उठाए। सुख और आनंद का आधार अपने कर्त्तव्यपालन में खोजे, जरूरतमंदों की मदद करे एवं दूसरों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करे।

दूसरों से तुलना-कटाक्ष भी दुःख का एक बड़ा कारण बनता है। उसकी कमीज मेरी कमीज से सफेद कैसे? अपने पड़ोसियों से हर चीज में तुलना अनावश्यक तनाव एवं दुःख का कारण बनते हैं। विचार किया होता तो समझ आता कि शायद पड़ोसी इन सबकी पात्रता रखता है, उसने कठोर श्रम, दीर्घ संघर्ष एवं त्याग द्वारा इसे अर्जित किया है या यह सब उसके स्वअर्जित पुण्य का फल है। उससे प्रेरित होकर हम भी वैसा ही प्रयास करते। हो सकता है कि पड़ोसी का सारा वैभव एवं रोब-दाब भ्रष्टाचार पर आधारित हो, ऐसे में उससे तुलना करना तो बेमानी होगी। 'अपनी मेहनत की रूखी-सूखी रोटी, दूसरों की चिकनी-चुपड़ी रोटी से बेहतर' कहावत ही सच्चे सुख का आधार है। दूसरों से अनावश्यक तुलना सदा दुःख एवं तनाव का कारण बनते हैं।

ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था में विश्वास का अभाव भी दुःख का एक बड़ा कारण बनता है, जो कर्मफल सिद्धांत से सीधे जुड़ा हुआ है। व्यक्ति जैसे कर्म करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। अच्छे कर्म करेगा तो अच्छे फल मिलेंगे, बुरे कर्म करेगा तो बुरा फल मिलेगा। अपने कर्मों के फल से कोई बच नहीं सकता। यह समझ व्यक्ति को सदा अच्छे एवं श्रेष्ठ कर्म करने के लिए प्रवृत्त करती है; जबकि इस आस्था के अभाव में व्यक्ति निकृष्ट कर्मों में लिप्त होने में संकोच नहीं करता। तात्कालिक लाभ या राग-द्वेष में आकर व्यक्ति गलत निर्णय लेता है और जीवन को अशांति के सागर की ओर धकेल देता है।

अपने जीवनलक्ष्य का स्पष्ट न होना व दूसरों की देखा-देखी इसका निर्धारण करना भी दुःख का कारण बनते हैं। व्यक्ति जीवन में वह आनंद अनुभव ही नहीं कर पाता, जो वह अपना पसंदीदा काम हाथ में होने पर करता। ऐसे में अनमने ढंग से व्यक्ति जीवन की गाड़ी को आगे धकेलता रहता है तथा जीवन की पूरी संभावनाओं को साकार नहीं कर पाने का दुःख उसे कहीं गहरे सालता रहता है।

इसके साथ जीवन में आध्यात्मिक आदर्श का अभाव भी दुःख का कारण बनता है। ऐसे में व्यक्ति एक सामान्य सांसारिक जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है। जीवन की उन उच्चतर संभावनाओं से वह वंचित ही रह जाता है, जो उसके अंदर ही विद्यमान होती हैं, व सुख-शांति एवं आनंद का वास्तविक स्रोत होती हैं। ऐसे में व्यक्ति जीवन में सुख-शांति की तलाश उस कस्तूरी मृग की तरह बाहर करता फिरता है, जो उसे कहीं मिलती नहीं; जबकि वह सुगंध तो उसकी नाभि में, उसके अंदर ही विद्यमान थी।

इस तरह जीवन में दुःख-अशांति के कारणों की समझ व्यक्ति को सुख-शांति के राजमार्ग पर चलने की राह दिखाती है, जिसका आधार एक संयमित-संतुलित, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईश्वरपरायण जीवन होता है तथा समझदारी, ईमानदारी, सदाचार, त्याग, सेवा, सहकार जैसे सद्गुण जिसके अभिन्न अंग होते हैं। ❑

हर अध्यात्मवादी विचारशील व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उत्कृष्ट विचारधारा का वास्तविक लाभ एवं आनंद लेने के लिए उसे कार्यान्वित करने के लिए भी तत्परता प्रकट करें। हम अपने स्वजनों में से प्रत्येक से यही आशा करते हैं कि यदि उन्हें अखण्ड ज्योति के विचार पसंद आते हों तो वे उन्हें कार्य रूप में परिणत करके अपनी आंतरिक ईमानदारी का परिचय दें। —*परमपूज्य गुरुदेव*

ध्रुव-सी निश्चल भक्ति से मिलते हैं भगवान

प्राचीनकाल की बात है। उत्तानपाद नाम के एक प्रतापी राजा थे। राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि। सुनीति बड़ी रानी थी और सुरुचि छोटी। दोनों रानियों का स्वभाव एकदूसरे से बिलकुल उलट था; सुनीति जहाँ धर्मपरायण और पतिव्रता थी तो वहीं सुरुचि अत्यंत कुटिल और कर्कश थी। हाँ! रूप-यौवन में सुरुचि, सुनीति से अवश्य श्रेष्ठ थी और इसलिए कुटिल और कर्कश होते हुए भी सुरुचि अपने रूप-यौवन के बल पर ही राजा के मन-मस्तिष्क पर छाई हुई थी। राजा उत्तानपाद भी सुरुचि के मोह-पाश में बँधे दीखते थे। दोनों रानियों के एक-एक पुत्र थे—ध्रुव और उत्तम। ध्रुव सुनीति के पुत्र थे और उत्तम सुरुचि के।

एक दिन राजा अपनी छोटी रानी सुरुचि के साथ बैठे वार्त्तालाप कर रहे थे कि तभी ध्रुव कहीं से खेलते हुए वहाँ आया और अपने पिता की गोद में बैठ गया। ध्रुव का पिता की गोद में बैठना उसकी सौतेली माँ सुरुचि को अच्छा नहीं लगा। उसने तुरंत ध्रुव को राजा की गोद से नीचे उतार दिया और बोली—"राजा की गोद में बैठने का अधिकार सिर्फ-और-सिर्फ मेरे पुत्र उत्तम का है, तुम्हारा नहीं। तुम जाकर अपनी माँ की गोद में बैठो।" उस समय ध्रुव की उम्र मात्र पाँच वर्ष की थी। विमाता के इस दुर्व्यवहार से बालक ध्रुव की आँखें भर आईं। वह बिलखता और सिसकता हुआ अपनी माता की गोद में चढ़ गया और फूट-फूटकर रोने लगा।

"तुम क्यों रो रहे हो मेरे लाल? तुम्हें खेलते समय किसी साथी ने कुछ कह तो नहीं दिया? तुम्हें खेलते हुए कहीं चोट तो नहीं आ गई?"—माँ के ऐसे प्रश्नों को सुनकर बालक और भी अधिक रोने लगा और अपने निश्छल स्वर में बोला—"मुझे मेरे किसी साथी ने नहीं मारा माँ! मुझे खेलते हुए कोई चोट भी नहीं आई है। मुझे तो छोटी माँ ने डाँटते हुए पिता की गोद से नीचे उतार दिया। उनका कहना है कि पिता की गोद पर सिर्फ उनके पुत्र का ही अधिकार है।" यह सुनकर ध्रुव की माँ भी बहुत आहत हुई, किंतु वह कर भी क्या सकती थी?

अपने पुत्र को पुचकारते हुए वह बोली—"पुत्र! छोटी माँ ठीक ही कहती है। इसलिए तुम दुःखी मत हो। यदि तुम पिता की गोद में बैठना ही चाहते हो तो परमपिता की आराधना करो। परमपिता परमेश्वर की आराधना से व्यक्ति कुछ भी प्राप्त कर सकता है।" बालक ध्रुव अपनी माता के वचनों पर विचार करने लगा। वह चिंतन-मनन करता रहा। वह अपनी बालबुद्धि से विचार करने लगा, भगवान कौन होते हैं? भगवान कैसे होते हैं? भगवान कहाँ रहते हैं? भगवान की आराधना किस प्रकार की जाती है? क्या मैं अपनी आराधना से भगवान को प्रसन्न कर पाऊँगा? क्या मेरी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान मुझे पिता की गोद में बैठने का अधिकार प्रदान कर देंगे? आदि-आदि।

अपने बालसुलभ भाव में ध्रुव अपनी माँ से पूछने लगा—"माँ! भगवान कैसे होते हैं? वे कहाँ रहते हैं?" माँ ने कहा—"पुत्र! भगवान कहीं दूर रहते हैं और लोग वनों, कंदराओं में जाकर भगवान को पाने के लिए तपस्या करते हैं, तब कहीं वे मिलते हैं।" यह सुनकर बालक ध्रुव ने अपनी माता को प्रणाम किया और राजभवन से बाहर निकल वन की ओर बढ़ चला। चूँकि सुनीति को भगवान में पूर्ण विश्वास था, इसलिए उसने भी अपने पुत्र को वन जाकर भगवान की आराधना करने से नहीं रोका।

ध्रुव वन की ओर बढ़ता जा रहा था और मन-ही-मन सोच रहा था कि मुझे भले ही यह पता न हो कि भगवान कहाँ परंतु जिसे पाने के लिए मैं निकला हूँ उसे तो पता है कि वह कहाँ रहता है; क्योंकि मेरी माँ कहती है कि भगवान सबके मन की बातें जानते हैं। इस प्रकार सोचता हुआ ध्रुव अपने मार्ग पर दृढ़ निश्चय के साथ बढ़ता ही जा रहा था कि तभी उसे मार्ग में नारद जी मिल गए। नारद जी को देखकर बालक ध्रुव ने उन्हें प्रणाम किया। नारद जी ने उसे आशीर्वाद दिया और पूछा—"नन्हे बालक! इस प्रकार राजभवन छोड़कर तुम अकेले कहाँ जा रहे हो?" सरल हृदय बालक ने नारद जी को सब कुछ बता दिया।

नारद जी बोले—"लेकिन ध्रुव, तुम तो बहुत छोटे हो और बालक का क्या अपमान, क्या सम्मान? इससे तुम्हें क्या फरक पड़ता है? तुम घर लौट चलो। चलो मैं तुम्हारे साथ राजभवन तक चलता हूँ। मैं तुम्हारे पिताजी को समझा दूँगा कि वे तुम्हें अपनी गोद में बैठने दें। फिर कभी वे तुम्हारे साथ वैसा दुर्व्यवहार न होने देंगे। यह तपस्या का मार्ग बड़ा कठिन है। इस मार्ग पर चलना कोई बच्चों का खेल नहीं। हाँ! जब तुम बड़े हो जाओगे तो तपस्या करने की बात सोचना। तुम कहोगे तो मैं स्वयं आकर तुम्हें तपस्या का मार्ग और विधि समझा दूँगा।"

ध्रुव था तो पाँच वर्ष का, पर उसका निश्चय अटल था। वह अपने निश्चय से पलटने को तैयार न था। उसने कहा—"महात्मन्! अब तो मैं माँ की आज्ञा लेकर घर से निकल पड़ा हूँ। मुझे तो भगवान को पाने के लिए तपस्या करनी है। उनकी आराधना करनी है। मुझे मेरी माँ ने बताया है कि मैं भगवान की आराधना करके, तपस्या करके वह पद प्राप्त कर सकता हूँ, जो न तो मेरे पिता को प्राप्त हुआ, न मेरे पितामह अथवा प्रपितामह को ही। आपने मुझे दर्शन दिया है तो कृपा करके मुझे भगवान की आराधना की विधि बता दीजिए।"

नारद जी तो बालक ध्रुव की परीक्षा ले रहे थे; सो बालक ध्रुव के दृढ़ निश्चय को देखकर वे अति प्रसन्न हुए। वे समझ गए ध्रुव कोई साधारण राजपुत्र नहीं है। यह कोई दिव्य विभूति है। इसने अपने पूर्वजन्म में निश्चित ही बड़ा कठोर तप किया है। अपने पूर्वजन्म में किए गए कठोर तप और भगवान की आराधना के कारण ही इस जन्म में मात्र पाँच वर्ष की आयु में ही यह तप करने के लिए, भगवान की आराधना के लिए दृढ़ निश्चयी है। यह अपने पूर्वजन्म के दिव्य संस्कारों के कारण ही तपस्या के लिए उद्यत है। भगवान को पाने को आकुल-व्याकुल है।

नारद जी बोले—"तुम्हारी माता ने यह ठीक ही कहा है कि भगवान की आराधना से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। पुत्र! तुम्हें तुम्हारी विमाता तुम्हारे पिता की गोद से उतार सकती है, परंतु जो परमपिता की गोद में जा बैठता है, उसे कोई भी नीचे नहीं उतार सकता; इसलिए पिता की गोद की अपेक्षा परमपिता की गोद में बैठना ही श्रेष्ठ है और रही बात परमपिता परमेश्वर की आराधना की तो पवित्र मन से, निश्चल मन से, निष्कपट मन से, निर्मल मन से 'ॐ' का उच्चारण करते हुए परमात्मा को पुकारते रहो। 'ॐ' उसी परमात्मा का नाम है, किंतु तुम कोई पद पाने की लालसा छोड़ दो; क्योंकि निष्काम भाव से पुकारने पर ही तुम्हें प्रभु मिलेंगे, प्रभु तभी मिलेंगे, जब केवल उन्हीं को पाने की इच्छा जागेगी। वही परमपिता अखिल ब्रह्मांड के स्वामी हैं। राजा-महाराजा तो सिर्फ अपने-अपने राज्य की सीमा के मालिक हैं। इन सबके महाराज तो प्रभु ही हैं, परमपिता ही हैं, परमेश्वर ही हैं, सर्वेश्वर ही हैं। वे सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिशाली हैं और सर्वव्यापी हैं; इसलिए एकमात्र उन्हीं सर्वेश्वर, परमेश्वर की आराधना करो वत्स!"

इस प्रकार नारद जी ने ध्रुव को विस्तार से भगवान की भक्ति, आराधना का मार्ग बताया, सारा विधि-विधान समझाया। ध्रुव को बहुविध उपदेश देकर नारद जी वहाँ से चले गए। उधर ध्रुव के राजभवन छोड़कर चले जाने का समाचार सर्वत्र फैल गया। राजा उत्तानपाद घबरा गए। वे न तो सुनीति से यह पूछने का साहस जुटा पाए कि बालक ध्रुव को जाने क्यों दिया, न ही वे सुनीति पर क्रोध ही प्रकट कर पाए।

राजा ने ध्रुव की खोज में ढेर सारे सैनिकों और दूतों को इधर-उधर भेजा, पर कोई भी ध्रुव को खोजने में सफल नहीं हुआ। राजा बहुत दुःखी थे। आखिर ध्रुव था तो उनका अपना पुत्र ही सो उनमें अपने पुत्र के प्रति प्रेम तो था ही, परंतु अब क्या करें? उनकी भूख-प्यास ही लुप्त हो गई। नारद जी जानते थे कि ध्रुव के जाने के बाद राजा बहुत दुःखी होंगे सो वे राजभवन पहुँचे। राजा उत्तानपाद ने उनका स्वागत-सत्कार किया। उन्होंने नारद जी को अपनी व्यथा-कथा सुनाई।

नारद जी बोले—"राजन्! चिंता की कोई बात नहीं। ध्रुव भगवान की आराधना करने को वन में गया है।" राजा ने कहा—"महात्मन्! आपने उसे वन जाने से क्यों नहीं रोका? वह तो अभी सुकोमल बालक है।" नारद जी बोले—"ध्रुव अभी पाँच वर्ष का बालक है, पर वह दृढ़ निश्चयी है। उसे उसके मार्ग से कोई भी विचलित नहीं कर सकता। वह तन से बालक है, परंतु मन से परिपक्व है।"

उधर नारद जी के बताए मार्ग से ध्रुव मधुवन पहुँच गया। वहाँ एक सुरम्य स्थान पर ध्रुव ने अपना तप आरंभ किया। कंद-मूल, फल के सहारे रहकर ध्रुव तप करने लगा। तपस्या करते हुए अनेक कष्ट-कठिनाइयाँ आए, कई

बाधाएँ आईं, आँधी-पानी, चिलचिलाती धूप, ठिठुरन भरी सरदी आदि सबका सामना करते हुए भी ध्रुव अपनी तपस्या में, आराधना में अविचल रहा, अटल रहा, अडिग रहा। यहाँ तक कि वन्य पशुओं का भी उसे कोई भय नहीं रहा। इस प्रकार उसकी तपस्या अविराम चलती रही।

ध्रुव मन से 'ॐ' का उच्चारण करते हुए प्रभु को पुकारता रहा व साथ ही नारद जी के बताए अनुसार अपने हृदय-कमल में मेघवर्ण, पीतांबरधारी, कमलनयन, भगवान विष्णु की दिव्य, मधुर छवि एवं उनके चतुर्भुज रूप का ध्यान करता रहा। इस प्रकार तप करते-करते बालक ध्रुव का मन पूर्णत: निर्मल हो गया। मन से सारी इच्छाएँ मिट गईं, सारी कामनाएँ मिट गईं और हृदय में सिर्फ परम प्रभु ही छाए रहे। ध्रुव भगवान विष्णु की उस मनोहर छवि एवं उनके रूप का ध्यान करते-करते अपने देह की सुध-बुध भी खो बैठा।

प्रभु तो सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापी हैं। वे ध्रुव की अटल भक्ति को देखकर अति प्रसन्न हुए। ध्यान की गहन अवस्था में डूबे हुए ध्रुव को अपने चिंतन-पट पर, अपने हृदय कमल में भगवान प्रकाश-पुंज के रूप में दिखाई दिए। नारद जी ने भगवान के जिस स्वरूप की व्याख्या की थी, वही ध्रुव को साक्षात् दिखाई दिए। उसे अपने हृदय में भगवान के दिव्य आभामंडल की प्रतीति हुई। उसके अंदर के ज्ञानचक्षु खुल गए। ध्रुव ने सजल नेत्रों से भगवान की स्तुति प्रारंभ कर दी।

भगवान बोले—"वत्स! मैं तुम्हारी निश्चल भक्ति से अति प्रसन्न हूँ। आज मैं तुम्हें वह पद प्रदान करता हूँ, जिसे तुम्हारे पिता, पितामह, प्रपितामह आदि कोई भी नहीं प्राप्त कर सके। तुम ध्रुवलोक के अधिकारी हो, किंतु अभी नहीं। अभी तो तुम वापस अपने घर जाओ। अपने पिता के बाद तुम राजसिंहासन को विभूषित करोगे। साथ ही अभी अपने पूर्वकर्मों का फल भोगो। राजा बनकर प्रजा का पालन-पोषण करना और राज्यसुख का भोग करना। यह अवधि समाप्त होने पर तुम मेरे लोक में निवास करोगे और सप्तर्षि तथा सभी तारामंडल उस लोक की प्रदक्षिणा करेंगे, जहाँ तुम्हारा निवास होगा। वह लोक ध्रुवलोक कहलाएगा।"

इस प्रकार भगवान का आशीर्वाद व मार्गदर्शन पाकर ध्रुव राजधानी लौटे। ध्रुव के लौटने का समाचार मिलते ही राजभवन सहित पूरे राज्य में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। माता सुनीति की प्रसन्नता का कोई पारावार न रहा। उन्होंने अपने पुत्र को अपनी गोद में भर लिया। ध्रुव तपस्या से तप्त व तृप्त हो गए थे। उनकी आयु भी बढ़ गई थी।

राजा उत्तानपाद ने उन्हें उसी दिन युवराज पद पर अधिष्ठित किया। अब महारानी सुरुचि में भी सद्बुद्धि आ गई थी। ध्रुव ने वर्षों तक राज्यसुख भोगा और प्रजा को आनंदित किया। यथासमय ध्रुव ने अपने लोक के लिए प्रस्थान किया।

इस कथा का सार-संदेश स्पष्ट है कि यदि हममें भगवान की भक्ति, आराधना, तपस्या हेतु दृढ़ निश्चिय हो तो हम भी प्रभु को पा सकते हैं, परमपिता को पा सकते हैं। उनका सतत ध्यान करते हुए, उन्हें अपने हृदयकमल में अवतरित कर सकते हैं और अपने जीवन को निहाल कर सकते हैं। ❑

विलंब की सूचना

कोविड-19 महामारी के कारण मार्च, 2020 से संपूर्ण भारतवर्ष में लॉकडाउन रहा, ट्रेनें अभी तक नहीं चल पा रही हैं। सर्वविदित है कि डाक का प्रेषण रेल डाकसेवा के माध्यम से होता है। डाकसेवा बाधित चल रही है—छोटे-मोटे पत्र/पैकिट सड़क मार्ग से जिस-तिस प्रकार पहुँच रहे हैं। अब डाक विभाग आंशिक रूप से जिस-तिस प्रकार डाक वितरण का कार्य प्रारंभ कर पा रहा है। आगे भी आपकी प्रिय अखण्ड ज्योति/युगनिर्माण योजना/गुजराती युगशक्ति गायत्री/प्रज्ञा अभियान कब तक मिलें, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हम लोग भरसक प्रयास कर रहे हैं कि पत्रिकाएँ समय से पहुँचें। विवशता के लिए हमें भी खेद है। आशा है परिवार के सदस्य अन्यथा न लेंगे।

पर्व विशेष

प्रकाश पर्व दीपावली

भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहारों में से एक 'दीपावली' प्रकाश पर्व के रूप में मनाई जाती है। विश्व के अलग-अलग देशों में रहने वाले प्रवासी भारतीय भी इस पर्व को प्रकाश पर्व के रूप में धूम-धाम से मनाते हैं। दीपावली का संदेश है कि हमारा हृदय निर्मल, मन प्रसन्न, चित्त शांत, शरीर स्वस्थ एवं अहंकारशून्य हो। परस्पर के पवित्र प्रेम तथा आत्मीयता में वृद्धि हो। त्रेतायुग में अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र 'मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम' जब पिता के वचन की पूर्ति के लिए चौदह वर्ष का वनवास पूरा करके तथा अहंकारी रावण का वध करके अपनी पत्नी सीता जी एवं अनुज लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटे तो नगरवासियों ने उनके स्वागत के लिए तथा अमावस्या की रात्रि को भी उजाले से भरने के लिए दीपक जलाए थे।

दीपावली को आलोक पर्व के रूप में मनाया जाता है। यह प्रकाश पर्व मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की शिक्षाओं पर चलकर जीवन जीने की प्रेरणा देता है। दीपावली मात्र एक पर्व अथवा त्योहार नहीं है, अपितु यह हमें अपने अंदर आत्मा का प्रकाश धारण करने की प्रेरणा देती है। जैन धर्म के अनुयायियों का मत है कि दीपावली के ही दिन महावीर स्वामी जी को निर्वाण मिला था। सिख धर्म को मानने वाले कहते हैं कि इसी दिन उनके छठे गुरु श्री हरगोविंद सिंह जी को जेल से रिहा किया गया था।

वनवास के मध्य ही लंका का राजा रावण भगवान श्रीराम की पत्नी माँ सीता जी का हरण करके उन्हें लंका ले गया था और तब हनुमान, अंगद, सुग्रीव, जामवंत एवं विशाल वानर सेना के सहयोग से समुद्र पर सेतु निर्माण करके तथा सोने की लंका पर आक्रमण करके उन्होंने रावण जैसे आततायी का वध कर धर्म तथा मर्यादित समाज की स्थापना धरती पर की थी। इसके अलावा संपूर्ण मानव जाति को यह संदेश दिया कि आतंक चाहे कितना भी सिर उठाने की कोशिश करे तो भी उसका अंत निश्चित है और 'बुराई पर अच्छाई सदा भारी पड़ती है।' इस स्मृति में हर वर्ष दशहरा मनाया जाता है, जो 'विजयादशमी' के नाम से भी विख्यात है और दशहरे के लगभग बीस दिन बाद ही दीपावली आती है।

भगवान राम ने अपने पूरे जीवनभर अनेक कष्ट उठाकर मर्यादाओं का पालन करते हुए रामराज्य की स्थापना की। रामराज्य का अर्थ अयोध्या के राजा राम का राज्य नहीं, वरन सारे संसार में आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना है। ऐसे राज्य में नगर, घर, खेत, खलिहान, गाँव, बाग, नदी, गुफा, घाटी, गली सभी जगह ईश्वरीय आलोक से भर जाती हैं। एक ऐसा रामराज्य जहाँ किसी को भी शारीरिक, दैविक तथा भौतिक किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। परिवार की एकता समाज की आधारशिला है। अतः हमें भी भगवान श्रीराम के जीवन से प्रेरणा लेकर अपने परिवार के सदस्यों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयत्न हर कीमत पर करना चाहिए।

यह त्योहार सारे भारत में अत्यंत हर्षोल्लास के साथ कार्तिक मास की अमावस्या पर तीन दिनों तक मनाया जाता है। अमावस्या से दो दिन पहले का दिन 'धनतेरस' के रूप में मनाया जाता है; जिसका संदेश है आरोग्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। दरअसल इस दिन भगवान धन्वंतरि जी का प्राकट्य हुआ था, जो सबको आरोग्य देते हैं; लेकिन कालांतर में यह दिन कोई-न-कोई नया बरतन, सोना, चाँदी आदि खरीदने के रूप में भी विख्यात हो गया। इस दिन तुलसी के पेड़ के पास या घर के द्वार पर दीपक जलाया जाता है। तत्पश्चात अगला दिन चतुर्दशी 'नरक चतुर्दशी' या छोटी दीपावली के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने आतंकी नरकासुर दैत्य का वध किया था। दीपावली के लगभग एक माह पूर्व से ही घरों में स्वच्छता, पुताई, रंग-रोगन एवं साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाने लगता है।

दीपावली के दिन लक्ष्मी जी एवं गणेश जी का पूजन अत्यंत श्रद्धा एवं आस्था के साथ किया जाता है। तरह-तरह के व्यंजन एवं खील-बताशों से उन्हें भोग लगाया जाता है।

पकवान तो इतने बनाए जाते हैं कि जैसे माँ अन्नपूर्णा ने अपने भंडार ही खोल दिए हों। रंग-बिरंगी रँगोली हर द्वार की शोभा में चार चाँद लगाती है। सब लोग नए वस्त्र पहनते हैं। अपने रिश्तेदारों एवं मित्रों को शुभकामनाएँ एवं उपहार देते हैं तथा मिठाइयाँ खिलाते हैं।

दीपावली पूजन के साथ ही व्यापारी नए बही-खाते प्रारंभ करते हैं और अपनी दुकानों, फैक्टरी, दफ्तर आदि में भी लक्ष्मी-पूजन का आयोजन करते हैं। कई लोग इसी दिन नए वित्तीय वर्ष की शुरुआत करते हैं। दीपावली पर एक दीये से ही दूसरा दीया जलाया जाता है। दीपावली का संदेश है कि अंधकार को क्यों धिक्कारें-अच्छा है कि एक दीप जलाएँ। तीनों ही दिन रात्रि में दीप जलाए जाते हैं। दीपावली के दूसरे दिन 'गोवर्धन पूजा' का पर्व मनाया जाता है। इस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने लोकहित के लिए इंद्र के अहंकार को तोड़कर उसे पराजित किया था। इस दिन गाय की पूजा पूरे भक्तिभाव से होती है।

दीपावली के दो दिन बाद तक यानी की भाईदूज तक दीपावली की रोशनी से पूजास्थल, हर घर, गली, चौराहे जगमगाते रहते हैं। 'भाईदूज' के शुभ अवसर पर बहन अपने भाई के मस्तक पर तिलक लगाकर उसकी भलाई की प्रार्थना करती है तथा उसके शुभ संकल्पों में पूरा सहयोग करने का वचन देती है। भाईदूज से अभिप्राय है कि जब बहन, भाई के ललाट पर टीका लगाती है तो वह कह रही होती है कि—'मेरे प्रिय भाई! मैं जीवन के प्रत्येक क्षण में आपके जनहित के संकल्प को पूरा करने में सहयोग करूँगी।'—अर्थात बहनें, भाई को ईश्वरीय कार्यों के लिए हार्दिक सहयोग जीवनपर्यंत देने की परमात्मा से प्रार्थना करती हैं। यही भाईदूज का वास्तविक अर्थ है।

हम दीपावली का यह परम पावन त्योहार खूब उत्साह से मनाकर अपनी संस्कृति को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। ऐसे सुंदर अवसरों पर यह चर्चा करना हम अक्सर भूल जाते हैं कि कैसे भगवान श्रीराम ने ईश्वर की आज्ञा तथा इच्छा को जानने के बाद समाज में मर्यादा का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए अपने जीवन के राजसी सुखों को दाँव पर लगा दिया। भगवान श्रीराम की शिक्षाएँ हमें थोड़ी देर के लिए भक्ति में भावविभोर कर देने के लिए नहीं हैं, वरन वे जीवनशैली बेहतर करने का व जीवन जीने का समग्र ज्ञान भी कराती हैं। साथ ही ये मनुष्य के जीवन में वैचारिक बदलाव लाकर रामराज्य की स्थापना का एक सुनिश्चित एवं ठोस आधार भी बनाती हैं।

भगवान श्रीराम द्वारा अपने जीवन द्वारा दी गई मर्यादा की शिक्षाएँ युगों-युगों तक मानव जाति को मर्यादित जीवन जीने का मार्गदर्शन प्रदान करती रहेंगी। उन्होंने अपने जीवन से मर्यादाओं के पालन की शिक्षा देकर मानव जीवन को मर्यादित बनाया। महापुरुषों ने श्रीराम के जीवन चरित्र को अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर व्यक्त किया है। रामायण के प्रणेता थे आदिकवि—'वाल्मीकि', उनकी काव्य-कृति 'रामायण' उनके अंतरंग से प्रस्फुटित हुई। महान संत तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' जनसामान्य में लोकप्रिय धार्मिक ग्रंथ है।

क्या यह उचित न होगा कि हम श्रीराम की अयोध्या वापसी का यह पर्व शिष्टता-शालीनता के साथ दीये, रोशनी जलाकर तथा पौष्टिक भोजन, फल व मिठाई खाकर मनाएँ? जुए-शराब व पटाखे जलाकर इसे समाज के लिए हानिकारक क्यों बनाएँ? धन बचाकर उसे परिवार के कल्याण तथा परोपकार में लगाएँ। इस तरह से सही माने में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्शों के अनुरूप दीपावली का पर्व मनाएँ। अपनी प्यारी धरती को सुंदर एवं सुरक्षित बनाने के लिए आज हमें यह संकल्प लेना चाहिए कि प्रदूषण द्वारा मानव जगत का विनाश हो रहा है तथा उससे मानव जगत को मुक्त करेंगे। हम दीपावली जरूर मनाएँगे, पर हम पटाखे नहीं चलाएँगे। शुभ दीपावली के बारे में जनसमुदाय को साफ-सुथरा पर्यावरण निर्मित करने के प्रति जागरूक करते हुए यह बताया जाना चाहिए कि वे पटाखे न छुड़ाएँ। ये पर्यावरण, स्वास्थ्य, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत हानिकारक हैं।

बहुत तेज आवाज वाले व 125 डेसिबल से अधिक पटाखे चलाने पर कानूनी प्रतिबंध है। शांतक्षेत्र अर्थात अस्पतालों आदि के 100 मीटर के दायरे में पटाखे छोड़ना पूर्णतः प्रतिबंधित है। हमारे देश में दीपावली पर 3000 करोड़ रुपये से अधिक के पटाखे एक दिन में धुआँ-बारूद बनकर हमारे वायुमंडल व वातावरण को विषाक्त करते हैं। इस धन से कितने अँधेरे घरों में चिराग जल सकते हैं तथा कितने बच्चों के मुरझाए चेहरे खिल सकते हैं। हर वर्ष दीपावली पर हो रही आगजनी की हजारों दुर्घटनाओं के कारण कितने बच्चे-नवयुवक अंधे-बहरे व अपंग हो रहे हैं

और कितनों की मृत्यु हो रही है तथा कितनी कीमती राष्ट्रीय संपदा जलकर खाक हो रही है। पटाखों के हुड़दंग से हमारे साथ पृथ्वी पर रहने वाले मासूम पशु-पक्षी भी बेहाल हैं।

हमारे शास्त्रों, पुराणों, वेदों, रामायण, गीता में हुड़दंग करके दीपावली मनाने का कोई उल्लेख नहीं है। जुए-शराब व पटाखों के बारूद से मनाई जाने वाली दीपावली मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की शिक्षाओं पर चलने के संदेश की उपेक्षा करती है। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि पूरे भारतवर्ष में अस्थमा रोगियों को पटाखों का प्रदूषण किस प्रकार हानि पहुँचाता होगा। क्या हम इस पाप के भागीदार नहीं हैं? केवल देश के एक महानगर में जले पटाखों का 1500 मीट्रिक टन कचरा जो फॉस्फोरस, सल्फर व पोटेशियम क्लोरेट से युक्त है, हमारी मिट्टी, पानी तथा हवा में जहर भर देगा। इस जानलेवा प्रदूषण से देश के शहर गैस चैंबर बन जाएँगे। दीपावली के पटाखों के कारण वायुमंडल में सल्फर-डाइऑक्साइड और कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा कई गुना बढ़ जाती है, जो सबके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। बच्चे, बूढ़े और बीमार इससे विशेष रूप से प्रभावित होते हैं।

दीपावली का पर्व सुख-समृद्धि, सुयश-सफलता, उन्नति, अंतस् की शुद्धता, पवित्रता और घर-आँगन की स्वच्छता की प्रेरणाओं से ओत-प्रोत पर्व है। इससे अज्ञानता के अंधकार की सारी बेड़ियाँ कट जाएँ और संसार का प्रत्येक व्यक्ति ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित हृदय धारण करके विश्व में सामाजिक परिवर्तन लाने का सशक्त माध्यम बने। जीवन के परम लक्ष्य ईश्वर की नजदीकी को प्राप्त करे। परमात्मा हमें कार्य-व्यवसाय में सदैव उन्नति-प्रगति की ओर अग्रसर रहने की प्रेरणा दें। बुराइयों को त्यागकर अच्छाइयों को ग्रहण करके आत्मा को जीवन जीने की शक्ति प्रदान करें। ज्योति पर्व दीपावली हम सबके लिए शुभ रहे और कल्याणकारी रहे। परमात्मा का स्नेह-आशीष सदैव हम सबके साथ रहे। इस पर्व पर ऐसी ही मंगलकामनाएँ सभी के लिए हैं। ❑

हजरत उमर तब खलीफा थे। उन्होंने अपने मंत्रियों को प्रजा का काम तुरंत करने की आज्ञा दी हुई थी। एक दिन एक आदमी इशरत नामक मंत्री के घर शुक्रवार की मध्य रात्रि को पहुँचा। दरवाजा खटखटाने पर मंत्री ने अंदर से कह दिया—"मैं मजबूर हूँ, अभी बाहर नहीं आ सकता। कृपया दूसरे दिन कभी भी आ जाइए।" उस व्यक्ति ने दूसरे दिन हजरत उमर से मंत्री की शिकायत की। खलीफा ने सुना तो नाराज होकर इशरत से ऐसा करने का कारण पूछा। इशरत ने कहा—"मेरी कुछ मजबूरी थी, वह मेरा राज है, कृपया उसे मुझ तक ही रहने दीजिए।" परंतु खलीफा ने तब भी कारण जानने की जिद की।

तब इशरत ने कहा—"हुजूर! सप्ताह के छह दिन मैं कार्य में बहुत व्यस्त रहता हूँ। शुक्रवार की रात को समय निकालता हूँ। मेरे पास कपड़ों का एक ही जोड़ा है, उसे मैं शुक्रवार की रात धोता हूँ, उस हालत में मैं बाहर कैसे आ सकता हूँ? फिर इबादत भी करनी होती है, अन्य दिनों उसके लिए भी समय नहीं मिलता। मेरा राज बस, यही है।" हजरत उमर ने सुना तो शुक्रिया अदा किया कि उनके राज्य में ऐसे मंत्री भी मौजूद हैं, जो अपनी जिम्मेदारी बखूबी समझते हैं। वे न तो जमात के प्रति गाफिल हैं और न खुदा को भूलते हैं, बल्कि सरकारी खजाने का एक पैसा लेना भी गुनाह समझते हैं।

उद्देश्यपूर्ण कर्म करें, सफलता सुनिश्चित होगी

कोई भी कोशिश कभी नाकाम यूं होती नहीं।
मंजिलें न भी मिलीं, तो फासले घट जाएँगे॥

इस कविता की यह पंक्ति कोशिश करने के महत्त्व को बताती है। निश्चित रूप से हर कोशिश कामयाब नहीं होती, लेकिन कई कोशिशों के बाद एक कोशिश ऐसी होती है, जो हमें सीधे कामयाबी तक पहुँचा देती है। कामयाबी तक पहुँचने से पहले यदि हार मान ली जाए, कोशिशें करनी बंद कर दी जाएँ, तो फिर मंजिल तक पहुँचना संभव नहीं होता।

जो अपनी हर कोशिश से, अपने हर प्रयास से कुछ-न-कुछ सीखता है, वही सकारात्मक होता है और अपनी मंजिल की ओर तेजी से बढ़ता है, लेकिन जो अपनी हर असफल कोशिश को नकारात्मक ढंग से देखता है, उसके कारण निराश होता है—वह अपने लक्ष्य की ओर कभी नहीं बढ़ पाता।

इस बात को स्पष्ट करने वाला एक उल्लेखनीय प्रसंग है। सन् 1914 के आखिरी महीने के दिन थे। तभी एक रात अमेरिका के महान वैज्ञानिक थॉमस अल्वा एडिसन की विशाल फैक्टरी में आग लग गई। आग धूँ-धूँ करके तेज लपटों के साथ जल रही थी और एडिसन उसकी उठती हुई विकराल गरम लपटों में अपनी जिंदगी की पूरी कमाई और अपने वर्षों के काम को राख में तब्दील होते हुए देख रहे थे। उनका चौबीस साल का बेटा चार्ल्स परेशान होकर अपने 67 साल के बूढ़े पिता को इधर-उधर ढूँढ़ रहा था। अपने बेटे पर नजर पड़ते ही एडिसन ने चिल्लाकर उससे कहा—"चार्ल्स अपनी माँ को बुलाकर लाओ। वो अपनी जिंदगी में इस तरह का दृश्य दोबारा कभी नहीं देख पाएँगी।"

सुबह होते-होते थॉमस एडिसन के सारे सपने और उनसे जुड़ी सारी आशाएँ राख हो चुके थे, लेकिन एडिसन राख के उस ढेर में से फीनिक्स पक्षी की भाँति एक नए रूप में बाहर आए। दंतकथाओं के अनुसार—फीनिक्स पक्षी अपने जीवन चक्र के अंत में खुद के इर्द-गिर्द लकड़ियों व टहनियों का घोंसला बनाकर उसमें जल जाता है। फिर उसी राख से एक नए फीनिक्स का जन्म होता है। इस विनाश को देखने के लिए वहाँ एकत्रित हुई भीड़ में एडिसन ने पूरे जोश व होश के साथ यह घोषणा की कि 'विध्वंस के बाद हानि नहीं, लाभ होता है। हमारी सारी गलतियाँ इस आग में जलकर राख हो गई हैं। ईश्वर को धन्यवाद कि इसके कारण हम दोबारा नई शुरुआत कर सकते हैं।'

फिर इस विध्वंसक घटना के कुछ दिनों बाद उनकी कंपनी ने अपना पहला फोनोग्राम तैयार कर लिया। निश्चित रूप से एडिसन के पास जो था, वह तो खतम हो चुका था, लेकिन भविष्य तो अभी बाकी था। साधन भले ही एडिसन के जलकर नष्ट हो गए थे, लेकिन समय अभी भी उसके साथ था। आग की भीषण ज्वालाओं में एडिसन ने अपने साधनों को गँवाया था, लेकिन अपने अनुभवों को नहीं और फिर इन्हीं अनुभवों के सहारे उसने फिर से एक नई शुरुआत की और उसमें वह सफल हो गया।

इससे यह सीख मिलती है कि विफलता में रोने वाला मनुष्य होता है, लेकिन उस परिस्थिति में भी हँसने वाला देवता होता है, ज्ञानवान होता है। विद्वान व्यक्ति यह जानता है कि सफलता के बीज असफलताओं की खाद व मिट्टी में ही पलते-बढ़ते हैं। इन बीजों को पनपने में समय लग सकता है, लेकिन जितना समय इन बीजों को असफलताओं की खाद-मिट्टी से जूझते हुए पनपने में लगता है, उतने ही ये मजबूत होते हैं और जितना कम समय इन बीजों को पनपने में लगता है, उतने ही ये कमजोर होते हैं।

इसका अर्थ यह है, जो जीवन में अधिक संघर्ष करते हुए, असफलताओं को सहते हुए सफलता तक पहुँचते हैं, वे उसका मूल्य समझते हैं और उतनी ही मजबूती के साथ सफलता की ऊँचाइयों पर टिके रहते हैं, लेकिन जो जितना कम संघर्ष करते हुए सफलता तक पहुँचते हैं, वे उसका महत्त्व नहीं समझ पाते हैं और न ही सफलता उनका देर तक साथ दे पाती है।

प्रकृति हमें अपने उदाहरण से एक सीख देती है कि जीवन में हमें सब कुछ नहीं मिल सकता। जो कुछ भी

महत्त्वपूर्ण व बहुमूल्य हमें मिलता है, उसमें भी हमें बहुत कुछ गँवाना पड़ता है। उदाहरण के लिए—वसंत ऋतु की शुरुआत होते ही आम के पेड़ 'बौर' से लद जाते हैं। यदि उस दौरान फूलों से लदे हुए 'बौराये' आम के पेड़ों को ध्यान से देखा जाए, तो आम के पेड़ की छोटी-छोटी टहनियों पर हरे-पीले—'धानी' रंग की छोटी-छोटी मनिकों वाली इतनी सारी मंजरियाँ लटकती रहती हैं कि आम के पत्तों को भी ठीक से देख पाना मुश्किल होता है और आम के इन पेड़ों के नीचे बौर के इतने फूल गिरे हुए होते हैं कि उन्हें देखकर लगता है कि पेड़ ने अपनी छाँह में एक सुंदर आसन बिछा लिया है।

जब लोग उन आम के पेड़ों के नीचे से गुजरते हैं, तो उनकी नाक में एक गजब किस्म की मादकता भर जाती है एवं चारों ओर फैलने वाली आम के बौर की मीठी खुशबू कोयल को भी कूकने पर विवश कर देती है। एक तो आम के बौर की मीठी खुशबू और ऊपर से कोयल के मधुर कूकने का स्वर। दोनों ही मिलकर मन में अमृत रस घोल देते हैं।

यहाँ सोचने की बात केवल इतनी है कि क्या आम के ये सारे बौर आम के मीठे-रसीले फलों में तब्दील हो पाएँगे? यदि हो भी गए, तो क्या पेड़ की डालें इतने आमों का बोझ सँभाल पाएँगी? यहाँ यह भी सोचना होगा कि क्या आम के पेड़ इन बौरों के टूटकर जमीन पर गिर जाने का शोक मनाएँ या यह मानकर चलें कि प्रकृति का यह नियम ही है कि पुराने पत्तों के झड़ने के बाद ही नए पत्ते आ पाते हैं। यदि नया बनना है, तो न केवल पुराने को नष्ट होना होगा, बल्कि जो नया बनने की प्रक्रिया में हैं, उनमें से ही कुछ को नष्ट होना होगा। यदि एक बार हमें प्रकृति के निर्माण की यह प्रक्रिया समझ में आ जाए, तो हमें सफलता का एक मूलभूत सूत्र हस्तगत हो सकता है।

दरअसल असफलता का प्रकृति में कोई अस्तित्व होता ही नहीं है। यदि थोड़ा-बहुत अस्तित्व होता भी है, तो वह केवल समाज में। समाज ने भी सफलता और असफलता को अपने ढंग से परिभाषित कर रखा है। उसकी इस परिभाषा के दो मुख्य आधार हैं—पहला है कर्म और दूसरा है उद्देश्य। यदि कर्म करते हुए उद्देश्य प्राप्ति हो गई, तो व्यक्ति सफल हो गया और यदि कर्म करते हुए उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाई तो व्यक्ति असफल हो गया, लेकिन इतिहास पर दृष्टि डाली जाए, तो पता चलता है कि समय ने असफलताओं की भी पूजा की है, उनका भी यशोगान किया है और उन्हें नमन किया है।

जो हम चाहते हैं, उसे पाना ही सफलता नहीं कहलाता। यदि ऐसा होता, तो सुभाष चंद्र बोस भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय नहीं बन पाते। यहाँ तक कि जिस आइ०सी०एस० (आज आइ०ए०एस०) बनने को उस समय हिंदुस्तान के नौजवानों की जिंदगी की सबसे बड़ी सफलता माना जाता था, वे उसमें सफल हुए। बाद में अपनी उसी सफलता को छोड़कर वे देश की आजादी के काम में लग गए, जिसमें वे जीते जी सफल न हो सके। फिर भी देश उनकी इस असफलता की पूजा करता है, आइ०सी०एस० बनने की सफलता की नहीं।

आराम करना उनके प्रति विश्वासघात करना है, जिन्होंने अनवरत श्रम करके हमें उठ सकने योग्य और सुख पा सकने योग्य बनाया। यह विश्वासघात इन असंख्य लोगों के प्रति भी है, जो कभी-कभी आराम भी नहीं कर पाते।

स्पष्ट है कि समाज हमें असफल होने की भी पूरी-पूरी आजादी देता है, बशर्ते कि हमारा उद्देश्य बड़ा हो और उस उद्देश्य को पूरा करने के साधन नैतिक हों। हम प्रायः सफलता व असफलता में अटककर रह जाते हैं। हम सफल होना चाहते हैं और असफल होने से घबराते हैं, जबकि हमें सफलता व असफलता के मानसिक द्वंद्व से बाहर निकलकर पूरे मनोयोग से अपना कर्म करना चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी कर्म के इस स्वरूप को समझाया है कि 'कर्म करने पर ही हमारा अधिकार है। फल मिलेगा या नहीं, इस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। इसलिए तुम वह करो, जिस पर तुम्हारा अधिकार है।' इसलिए यदि जीवन का आनंद लेना है तो सफलता व असफलता के मानों से दूर हटकर सुकर्म करने में आनंद लेना चाहिए। ❑

याचक नहीं, उपासक बनें

एक शिष्य के जीवन को सजाने में, सँवारने में गुरु की वही भूमिका है, जो किसी पौधे के संपूर्ण विकास में एक माली की होती है। किस पौधे को कब और कितना खाद और पानी चाहिए, इसे एक माली बखूबी जानता है। एक माली एक नन्हे से पौधे को लगाता है, उसे सींचता है उसे कीड़ों से, पशुओं से, रोगों से बचाता है। तभी तो एक दिन एक नन्हा-सा पौधा ही वृक्ष बनकर आकाश को छूने लगता है।

माली के कारण ही तो एक दिन सारा गुलशन महक उठता है। वैसे ही गुरु भी शिष्य में एक नई चेतना को जन्म देता है। वह उसकी चेतना को अपने ज्ञानामृत से सींचता है। वह उसे भवरोगों से बचाता है, दुर्गुणों से बचाता है। तभी तो एक दिन वह शिष्य अपनी चेतना के शिखर को छू पाता है और ब्रह्म साक्षात्कार कर पाता है। एक दिन शिष्य का जीवन भी गुलशन की तरह महक उठता है। उस परिष्कृत व्यक्तित्व को उपलब्ध शिष्य को देखकर एक गुरु को कैसी आनंदानुभूति होती होगी, उसे शब्दों में बता पाना कैसे संभव है; क्योंकि वहाँ तो शब्द भी नि:शब्द हो जाते हैं।

उस शिखर तक पहुँचने के लिए एक शिष्य को स्वयं को पूर्णत: अपने गुरु के हवाले करना होता है, माली के हवाले करना होता है और अपनी इच्छाओं का, कामनाओं का सर्वथा त्याग करना होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जैसे एक रोगी स्वयं को पूर्णत: एक चिकित्सक के हवाले कर देता है; वैसे ही एक शिष्य को भी स्वयं को गुरु के हवाले कर देना होता है; क्योंकि तभी गुरु एक कुशल चिकित्सक की तरह शिष्य की चेतना में अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार कर पाता है। उसके चित्त की वृत्तियों के कारणरूप उसके कर्म-संस्कारों के समूल नाश का, विनाश का मार्ग प्रशस्त कर पाता है।

जैसे यदि चिकित्सक रोगी की आवश्यक शल्य-क्रिया या चिकित्सा करने के बजाय उसकी इच्छापूर्ति करने में लग जाए, उसे उसकी इच्छानुसार खाने-पीने की छूट दे दे तो फिर न तो रोगी की सही चिकित्सा हो पाएगी और न ही रोगी रोगमुक्त हो सकेगा। रोगी को रोगमुक्त होने के लिए तो चिकित्सक के अनुसार ही चलना होगा, चिकित्सक के परामर्श को मानना होगा, वैसे ही एक शिष्य को भी अपनी इच्छा से नहीं, गुरु की इच्छा से चलना होता है। गुरु की इच्छा को ही, ईश्वर की इच्छा को ही अपनी इच्छा बनाना होता है तभी तो वह चेतना के शिखर को छू पाता है, वरना अपनी इच्छा को ढोते फिरने के चक्कर में वह छोटा ही बना रह जाता है, फिर वह बीज से वृक्ष नहीं बन पाता। वह फिर अपने जीवन के शीर्ष को नहीं छू पाता और किसी तरह घिसी-पिटी जिंदगी जीकर एक दिन संसार से विदा हो जाता है।

कहने को तो हम भी स्वयं को अपने गुरु का सच्चा शिष्य मानते हैं; हम भी अपने आप को भगवान का भक्त मानते हैं। हम अपने आप को ईश्वर का, गुरु का, उपासक मानते हैं और अक्सर हम ईश्वरदर्शन को मंदिरों में जाते भी हैं, आश्रमों में जाते भी हैं। अपने आराध्य से, अपने गुरु से हम मिलते भी हैं, पर वहाँ जाकर भी क्या हम अपने आराध्य का, अपने भगवान का, अपने गुरु का दर्शन कर पाते हैं? क्या हम सचमुच अपने गुरु के दरबार में, ईश्वर के दरबार में उपासक बनकर जा पाते हैं?

शायद नहीं। क्यों? क्योंकि गुरु के समीप बैठकर भी, ईश्वर के समीप बैठकर भी हम उपासना से दूर ही रहते हैं। उनके पास होकर भी हम उनसे दूर ही होते हैं; क्योंकि हम वहाँ भी अपनी तुच्छ इच्छाओं की टोकरी को अपने सिर पर ढोये फिरते हैं। वहाँ हम रोते हैं, गिड़गिड़ाते हैं, ढेर सारी याचनाएँ करते हैं, पर ईश्वर के समीप जाने का, गुरु के समीप जाने का, बैठने का वास्तविक उद्देश्य तो हमें हमारे गुरु ही बता पाते हैं। उपासना का असली मर्म तो हमारे गुरु ही बता पाते हैं। हमारे आराध्य, हमारे गुरु ही हैं, जो हमें बताते हैं कि उपासना याचना नहीं और याचना उपासना नहीं। हम ईश्वर के पास जाएँ, अपने गुरु के पास जाएँ, पर याचक बनकर नहीं, उपासक बनकर; दर्शक बनकर नहीं, द्रष्टा बनकर। तभी तो उनके पास जाने की, उनके पास बैठने की सार्थकता हो सकेगी।

उस विराट ईश्वर की प्रतिमा के समक्ष खड़े होकर, उस ब्रह्मज्ञानी गुरु के समक्ष खड़े होकर भी, उनके पास होकर भी, उनके समीप होकर भी, उनके समीप बैठकर भी उनसे स्वयं को बंधन में बाँधने वाली याचनाएँ क्यों करना? वहाँ तो उनकी विराटता की अनुभूति करनी चाहिए। उनकी विराटता को स्वयं के अंतस् के आकाश में उतरते हुए देखना चाहिए।

वहाँ देखना चाहिए कि जैसे हमारे आराध्य, हमारे भगवान, हमारे गुरु के हृदयाकाश में कोटि-कोटि सूर्य, चंद्र व तारे जगमगा रहे हैं, वैसे ही क्या हमारे स्वयं के हृदयाकाश में भी अब ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि के रूप में कोटिश: सूर्य, चंद्र व तारे जगमगाने लगे हैं? क्या हमारे अंतस् से अज्ञान का अँधेरा मिटने लगा है? जैसे आकाश में हजारों सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी हमारे विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो, हमारे गुरु के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो—यही वो दिव्य अनुभूति है, जो हमें उपासना में करनी है।

जैसे दर्पण में हम अपने रूप को भली भाँति देख पाते हैं, वैसे ही ईश्वर की, गुरु की प्रतिमाओं में, हम अपने वास्तविक स्वरूप को देख पाते हैं। अपने सोऽहम्, शिवोऽहम्, सच्चिदानंदोऽहम् रूप को देख पाते हैं, निहार पाते हैं। अस्तु उपासना में ईश्वर के पास बैठकर या गुरु के पास बैठकर हमें स्वयं भी वैसा ही होना है, जैसे कि स्वयं हमारे आराध्य हैं, भगवान हैं, गुरु हैं।

उस विराट ब्रह्मसमुद्र के समीप खड़े होकर, समीप होकर भी उससे बूँद, दो बूँद जल पाने की याचना क्या करना? उस विराट ब्रह्मसमुद्र में उतरकर, डूबकर, उसमें घुल-मिलकर हम स्वयं भी बिंदु से सिंधु, सरिता से सागर क्यों नहीं हो जाएँ? हम उस ब्रह्मसमुद्र के समीप होकर भी स्वयं के अंतस् में भी प्रेम, पवित्रता, करुणा, संवेदना आदि दिव्य गुणों की रसधार क्यों नहीं प्रवाहित कर लें? अपनी आत्मा में ही परमात्मा के सत्-चित्-आनंदस्वरूप की अनुभूति क्यों नहीं कर लें।

वास्तव में ईश्वर दर्शन की, गुरु दर्शन की, ईश्वर के पास, गुरु के पास बैठने की यही तो वास्तविक फलश्रुति है। समुद्र के पास बैठकर उसकी गहराई, उसकी विराटता की अनुभूति, गंगा के पास बैठकर उसकी शीतलता की अनुभूति, ईश्वर के पास एवं गुरु के पास बैठकर उसकी ब्रह्मानुभूति करना ही तो उपासना है, यही तो सच्ची उपासना है, सच्ची भक्ति, सच्चा समर्पण है, सच्चा योग है, ईशदर्शन है और हम स्वयं भी तो ईश्वर अंश ही हैं। हम स्वयं भी तो सुख की राशि हैं तो फिर गुरु से, ईश्वर से याचना क्या करना। अपना जो कुछ है, सो उनका अर्थात परमात्मा का है और उनका जो कुछ है, सो अपना ही तो है।

हमें तो बस, ईश्वर के समीप बैठकर, गुरु के समीप बैठकर उनकी ईश्वरीय विराटता का बार-बार स्मरण करना है। उनके दिव्य गुणों का बार-बार स्मरण करना है। तभी तो हमें स्वयं की विराटता का, अपने सत्-चित्-आनंद रूप का स्मरण हो सकेगा, जिसका हमने विस्मरण कर दिया है तो उस विस्मरण का बार-बार स्मरण ही उपासना है।

ऐसी उपासना से हम स्वयं भी ईश्वरमय हो सकते हैं। हम वो बन सकते हैं, हम वो हो सकते हैं—जो हमारे आराध्य, हमारे गुरु हमें बनाना चाहते हैं। ऐसे में उपासना में ईश्वर या गुरु के समीप होकर स्वयं को भी उनके ही रंग में क्यों न रँग लें? ईश्वर की विराटता का, ईश्वर की दिव्यता का बार-बार स्मरण कर हम स्वयं भी क्यों न विराट बन जाएँ, दिव्य बन जाएँ, मानव से माधव बन जाएँ? जैसा कि संत कबीर ने प्रस्तुत दोहे में कहा है—

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

अर्थात मुझे हर जगह ईश्वरीय ज्योति दिखती है। अंदर, बाहर, हर जगह, लगातार ऐसी दैवी ज्योति देखते-देखते मैं भी ईश्वरीय हो गया हूँ। ईश्वर की दिव्यता देख-देखकर मैं भी दिव्य हो गया हूँ। उनकी लाली देखकर मैं भी लाल हो गया हूँ। दरअसल इस दोहे में कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे प्रभु का रंग कुछ ऐसा था कि चारों ओर ज्ञानस्वरूप लाली छाई हुई थी। मैंने सोचा मैं भी जाकर देखता हूँ और उनके समक्ष जाते ही वही रंग मेरा भी हो गया।

अस्तु हम भी क्यों न उपासना में बैठकर, आराध्य के पास बैठकर, गुरु के पास बैठकर याचना करने के बजाय स्वयं को ही अपने प्रभु के रंग में रँग लें? और यदि हो सके तो उपासना में बैठकर अपने प्रभु से, गुरु से नित्य यही प्रार्थना भी करें कि हे प्रभु! आप मुझे भी अपने ही रंग में रँग लीजिए; क्योंकि हे प्रभु! मैं स्वयं को किसी और रंग में रँगना ही नहीं चाहता। कुछ इसी तरह के दिव्य भाव प्रस्तुत गीत में भी गुंजरित हो रहे हैं।

श्याम पिया मोरी, रंग दे चुनरिया।
ऐसी रंग दे के, रंग नाही छूटे,
धोबिया धोये चाहे, सारी उमरिया,
श्याम पिया मोरी, रंग दे चुनरिया॥
लाल ना रँगाऊँ मैं तो, हरी ना रँगाऊँ,
अपने ही रंग में, रंग दे चुनरिया,
श्याम पिया मोरी, रंग दे चुनरिया।
बिना रँगाये मैं तो, घर नहीं जाऊँगी,
बीत ही जाए चाहे, सारी उमरिया,
श्याम पिया मोरी, रंग दे चुनरिया॥
मीरा के प्रभु, गिरधर नागर,
प्रभु चरणन में, लागी नजरिया,
श्याम पिया मोरी, रंग दे चुनरिया॥

❑

अयोध्या के राजा सगर न्यायप्रिय शासक थे। एक दिन उनसे कुछ नागरिक मिलने आए। वे रोते-रोते, डरते-डरते बोले—"महाराज! आपके पुत्र राजकुमार असमंजस ने हमारा राज्य में रहना दूभर कर दिया है। वे शाम को सरयू तट पर पहुँचते हैं। खेलते हुए अबोध बालकों में से जिसे चाहे, उसे उठाकर नदी की उफनती धारा में फेंक देते हैं। जब डूबते बालक रोते हैं तो राजकुमार जोर से अट्टहास कर अपना मनोरंजन करते हैं। कई अबोध बालक राजकुमार के इस मनोरंजन के शिकार बन चुके हैं।"

यह सुनते ही राजा का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। राजा ने राजकुमार को तुरंत दरबार में उपस्थित होने का आदेश भेजा। राजकुमार उपस्थित हुआ। राजा बोले—"तुम राजकुमार हो या जल्लाद! तुम प्रजाजनों के निर्दोष बच्चों को सरयू में फेंककर क्रूर मनोरंजन करते हो। मेरे राज्य में ऐसा क्रूर व्यक्ति एक क्षण भी नहीं रह सकता।"

राजकुमार भयभीत हो गया और उसने महाराज से क्षमा माँगते हुए भविष्य में ऐसा न करने का वचन दिया, परंतु राजा ने कहा—"अनेक अबोध बच्चे तुम्हारे क्रूर मनोरंजन का शिकार बन चुके हैं, मैं ऐसे क्रूर युवक को अपना पुत्र मानकर संरक्षण नहीं दे सकता।" न्यायप्रिय राजा ने राजकुमार असमंजस को अयोध्या से निष्कासित कर दिया।

चंद्रमा का ज्योतिषीय महत्त्व

भारतीय धर्मशास्त्रों में चंद्रमा के विषय में जितना अधिक वर्णन मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी ज्ञानकोश में नहीं मिलता है। हमारे शास्त्रों ने चंद्रमा को पितरों की भूमि माना है। हमारा ज्योतिष विज्ञान कितना उन्नत है, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आधुनिक विज्ञान आज भी चंद्रमा पर पानी और बरफ की खोज कर रहा है, लेकिन हमारे ज्योतिष विज्ञान में चंद्रमा को जलतत्त्व का कारक ग्रह कहा गया है।

महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन के ज्योतिर्विज्ञान के प्राध्यापक प्रो. उपेंद्र भार्गव के मुताबिक—'चंद्रमा को ध्यान में रखकर हमारे धर्मशास्त्रीय विधान, जप, तप, व्रत, उपवास, दान, यात्रा, विवाह एवं उत्सव आदि का निर्णय किया जाता है।' चंद्रमा हमारे सनातन धर्म में वर्णित प्रत्यक्ष देवताओं में प्रधान देवता है।

प्राचीन वैदिककाल से ही प्रकृति एवं परमात्मा के प्रतीक के रूप में जिन देवताओं की पूजा की जाती है उनमें सूर्य, अग्नि, वरुण, वायु, पृथ्वी, इंद्र एवं चंद्रमा प्रमुख हैं। सौम्य एवं शीतल किरणें होने के कारण चंद्रमा को सोम, शीतकर तथा रात्रि का स्वामी होने के कारण राकेश, निशाधिपति, निशाकर आदि भी कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से चंद्रमा की गति पूर्वाभिमुख है। वह कर्क राशि का स्वामी, गौर वर्ण का, वायव्य दिशा का अधिपति, शुभग्रह, सत्त्वगुणयुक्त, जलतत्त्व प्रधान जलीय ग्रह है तथा मणि उसकी धातु कही गई है।

चंद्रमा की उत्पत्ति के विषय में वेद में कहा गया है कि ब्रह्मा अर्थात सृष्टिकर्त्ता ने सर्वप्रथम भूमितत्त्व को उत्पन्न किया तदनंतर मरुद्गण व 49 प्रकार की वायु को उत्पन्न किया, इसके उपरांत ब्रह्मा ने आदित्य—सूर्य को उत्पन्न किया तथा सूर्य से ही चंद्रमा की उत्पत्ति हुई। माध्यंदिनी संहिता में कहा गया है—"ब्रह्मा ने कामना की, कि भूमि उत्पन्न हो और भूमि उत्पन्न हो गई। उन्होंने सूर्य के उत्पन्न होने की कामना की और सूर्य सहित दिशाएँ उत्पन्न हो गईं। एक विशालकाय सोने का अंडा हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, जिसमें विक्षोभ हुआ और वह दो भागों में विभक्त हुआ। उसके विभाजन से प्रवाहित हो रहे रेतस् से चंद्रमा तथा नक्षत्र आदि उत्पन्न हुए।" वायु पुराण में कहा गया है—"नक्षत्र, चंद्रमा एवं ग्रह आदि सभी की उत्पत्ति सूर्य से हुई है।" "अग्नीषोमात्मकं जगत्" के अनुसार—"संसार अग्नि और सोम रूप है।" अग्नि ही सूर्य रूप में व्याप्त होता है और सोम चंद्रमा के रूप में। सृष्टि में दोनों की अनिवार्य आवश्यकता है।

वैदिक साहित्य में चंद्रमा की गति का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में अमावस्या में उदयकालिक सूर्य की ओर जाते हुए शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को सूर्य से आगे निकलते हुए चंद्रमा को देखकर लिखा गया है—

चन्द्रमा वा अमावास्यायाम् आदित्यमनुप्रविशति।
आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते॥

अर्थात चंद्रमा में स्वयं का प्रकाश नहीं होता। इस विषय का ज्ञान भी वैदिककाल में किया जा चुका था कि वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। इस कारण तैत्तिरीय संहिता में चंद्रमा को '**सूर्यरश्मि चन्द्रमा**' कहकर संबोधित किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के मन में चंद्रमा की उत्पत्ति हुई, अतः चंद्रमा को मन का कारक कहा गया है। ऋग्वेद के अनुसार चंद्रमा की किरणें अमृत-बिंदु के समान हैं तथा वह समस्त औषधियों का स्वामी है।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो
अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं
ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥

हिंदू धर्मशास्त्रों की मान्यता के अनुसार हमारे पूर्वज जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, वे पितर बन जाते हैं तथा उनका निवास स्थान चंद्रमा का वही पृष्ठ भाग है, जिसे हम विपरीत दिशा में होने के कारण देख नहीं सकते हैं, जो कि सूर्यग्रहण का भी कारण होता है। हमारे धर्मशास्त्रों में इसे ही पितृलोक कहा गया है।

शास्त्रों का मत है कि जिस लोक का हम विचार कर रहे हैं, उस लोक के अनुरूप ही वहाँ का जीवन एवं शरीर भी होता है। जिस प्रकार पृथ्वी पर पंचभौतिक पार्थिव शरीर होता है, वैसे ही अन्य लोकों में उनसे संबंधित तत्त्व से युक्त शरीर होते हैं, जिन्हें सामान्य दृष्टि से देख पाना संभव नहीं है।

पुराणों के अनुसार, एक बार रावण ने चंद्रलोक में जाकर चंद्रमा पर बाणों का प्रयोग किया था तथा ब्रह्मा की आज्ञा से वह वापस लौट आया था। महिषासुर ने भी चंद्रमा पर अपना आधिपत्य जमा लिया था, जिसका देवी दुर्गा ने वध किया था। धर्मशास्त्र के अनुसार चंद्रमा या चंद्रलोक को एक दिव्य धाम माना गया है; जहाँ विविध प्रकार का सुख-वैभव माना जाता है और उसे धर्ममार्ग, तप व योगपूर्वक ही प्राप्त किया जा सकता है।

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में चंद्रमा की कलात्मक ह्रास-वृद्धि की स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जिस तरह धूप में स्थित घड़े का सूर्य की तरफ का आधा भाग रोशनी वाला और विरुद्ध दिशा में स्थित दूसरा आधा भाग अपनी छाया से ही काला दिखाई देता है, उसी तरह सदा सूर्य के अधोभाग में स्थित चंद्रमा का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और उसके विपरीत का अर्द्धभाग अपनी ही छाया से कृष्ण दिखाई देता है।

ज्योतिषशास्त्र में चंद्रमा को जलीय ग्रह कहा गया है। अत: उसके रात्रि में प्रकाशित होने के कारण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार दर्पण पर गिरी हुई सूर्य की किरणों के प्रतिबिंब से घर के अंदर का अंधकार नष्ट हो जाता है, उसी तरह जलमय पिंड की तरह दिखने वाले चंद्रमा के ऊपर गिरने वाली सूर्य की किरणों के प्रतिबिंब से पृथ्वी पर रात्रिसंबंधी अंधकार नष्ट होता है। चंद्रमा पर होने वाले उल्कापातों के विषय में भी भारतीय ज्योतिषियों को ज्ञान हो चुका था। उन्होंने ग्रहणकाल में चंद्रमा पर होने वाले उल्कापातों के फल का भी विवेचन किया।

भारतीय गणितज्ञों ने चंद्रमा की परिधि का मान— सूर्यसिद्धांत के अनुसार 480 योजन तथा कक्षामान 3,24,000 योजन तथा आर्यभट के अनुसार चंद्रपरिधि 315 योजन तथा कक्षामान 2,16,000 योजन के बराबर बताया है; जो कि लगभग आधुनिक मान के तुल्य ही है। आधुनिक मान में लगभग 12 किलोमीटर का एक योजन माना गया है, तदनुसार उक्त गणना का आकलन किया जा सकता है। चंद्रसापेक्ष घटित होने वाले दिन व रात को भारतीय गणितज्ञों ने पैत्रमान (पितरों से संबंधित दिन-रात्रि व्यवस्था) कहा है।

त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतः।
निशा च मासपक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः॥

अर्थात चंद्रमा की 30 तिथियों का एक चांद्रमास होता है तथा वहीं एक मास पितरों का एक अहोरात्र (दिन-रात) के बराबर होता है अर्थात 15 तिथियों के बराबर एक दिन और 15 तिथियों के बराबर एक रात्रि होती है।

अमावस्या को पितरों की मध्यरात्रि एवं पूर्णिमा को दिनार्द्ध होता है। कृष्णपक्ष की साढ़े सप्तमी से पितरों के दिन का आरंभ तथा शुक्लपक्ष की साढ़े सप्तमी से उनकी रात्रि का आरंभ होता है। चंद्रमा के उस छोर पर जो हमें दिखाई नहीं देता अर्थात दक्षिणी ध्रुव पर भी 15 दिन अँधेरा तथा 15 दिन उजाला होता है। इस प्रकार हमारे जीवन के लिए चंद्रमा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इससे हमारा मन प्रभावित होता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः

भारतीय संस्कृति में गुरु की बहुत महिमा गाई गई है। गुरु का स्थान ईश्वरतुल्य एवं ईश्वर से भी ऊपर माना गया है। 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान)। अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट करने वाला जो ब्रह्मरूप (ज्ञान रूप) प्रकाश है—वह गुरु है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गुरुगीता आदि शास्त्रों में गुरु की महान महिमा गाई गई है। गुरु की महिमा का गान करते हुए भगवान शंकर गुरुगीता में भगवती पार्वती से कहते हैं—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥ 76॥
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ 77॥
सप्तसागरपर्यन्ततीर्थ स्नानादिकं फलम्।
गुरोरङ्घ्रिपयोबिन्दु सहस्त्रांशेन दुर्लभम्॥ 78॥
हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥ 79॥
गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूजयेद् गुरुम्॥ 80॥

अर्थात—परमपूज्य गुरुदेव की भावमयी मूर्ति ध्यान का मूल है। उनके चरणकमल पूजा का मूल हैं। उनके द्वारा कहे गए वाक्य मूलमंत्र हैं। उनकी कृपा ही मोक्ष का मूल है। गुरुदेव ही आदि और अनादि हैं। वे ही परमदेव हैं। उनसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है—उन श्रीगुरु को नमन है। सप्तसागरपर्यंत जितने भी तीर्थ हैं, उन सभी के स्नान का फल गुरुदेव के पादप्रक्षालन के जल-बिंदुओं का हजारवाँ हिस्सा भी नहीं है। यदि भगवान शिव स्वयं रूठ जाएँ तो श्रीगुरु की कृपा से रक्षा हो जाती है, लेकिन यदि गुरु रूठ जाएँ तो कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होता। इसलिए सभी प्रकार से कृपालु सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप यह जो जगत है, वह गुरुदेव का ही स्वरूप है। गुरुदेव से अधिक और कुछ भी नहीं है। इसलिए सब तरह से गुरुवर की अर्चना करनी चाहिए।

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी गुरु की महिमा का बड़ा ही मधुर व सुंदर गायन किया है, जिसमें वे कहते हैं—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥
बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।
किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥
श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥
जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥
गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

अर्थात—मैं उन गुरु महाराज के चरणकमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नररूप में श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महामोहरूपी घने अंधकार का नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समूह हैं। मैं गुरु महाराज के चरणकमलों की रज की वंदना करता हूँ, जो सुरुचि (सुंदर स्वाद), सुगंध तथा अनुरागरूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण है, जो संपूर्ण भवरोगों के परिवार को नाश करने वाला है।

वह रज सुकृति (पुण्यवान पुरुष) रूपी शिव जी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनंद की जननी है और भक्त के मनरूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है तथा गुरु महाराज के चरणों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण मात्र से ही हृदय में दिव्यदृष्टि उत्पन्न हो जाती है।

वह प्रकाश अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करने वाला है। वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं; क्योंकि उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रि के दु:ख-दोष मिट जाते हैं एवं श्रीरामचरित्ररूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जिस खान में हैं—वे सब दिखाई पड़ने लगते हैं, वैसे ही जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत-सी खानें देख लेते हैं।

निस्संदेह गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्मा जी और शंकर जी के समान ही क्यों न हो। संत कबीर इसी विषय में कहते हैं—

सत्गुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भांडर तोड़ि कर, रहे निराला होय॥

अर्थात—सद्गुरु मिल गए, यह बात तब जानो जब तुम्हारे हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाए और भ्रम का भंडा फोड़कर तुम अपने ज्ञानस्वरूप ज्ञान को प्राप्त हो जाओ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु की महिमा अपरंपार है। गुरु ब्रह्मा के रूप में शिष्य में एक नई चेतना को जन्म देते हैं। उसमें एक नई दृष्टि, नई सृष्टि का सृजन करते हैं। विष्णु बनकर वे शिष्य का पालन करते हैं। शिष्य में सद्गुणों व सद्भावों का पोषण करते हैं व शिव बनकर शिष्य के दुर्गुणों व दोषों का संहार करते हैं। इसलिए पूर्ण श्रद्धा के साथ जो शिष्य, जो साधक अपने गुरु की शरण में जाता है उसके जीवन में एक नया सवेरा होता है। उसके जीवन में सौभाग्य का सूर्य चमक उठता है।

निर्जीव वस्तु को ऊपर फेंकने के लिए जैसे सजीव की जरूरत होती है; वैसे ही अपने वास्तविक स्वरूप से अपरिचित होने के कारण पशुतुल्य बने मानव को देवत्व की ओर ले जाने के लिए जिस तेजस्वी व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है—वह गुरु ही है। गुरु ही शिष्य को, साधक को साधना के मार्ग पर अग्रसर करता है। साधक एक यात्री की भाँति होता है; क्योंकि साधना के माध्यम से वह अंतर्जगत की यात्रा करता है। इस यात्रा में उसे कई दुर्गम घाटियों से होकर गुजरना होता है। कभी उसके अंदर कामना का बवंडर उठ खड़ा होता है तो कभी वासना का। कभी उसे लोभ सताता है तो कभी मोह। कभी उसे साधना पूर्ण नहीं होने का भय सताता है तो कभी उसका अपना आत्मबल ही कमजोर पड़ने लगता है।

ऐसे में कई शंकाएँ, आशंकाएँ घटाटोप बादल बनकर उसके मार्ग में अँधियारा लाते हैं। कई बार तो उसका स्वयं का विश्वास ही, आत्मविश्वास ही, आत्मबल ही कमजोर पड़ने लगता है। इन सभी बाधाओं के बीच गुरु अपने शिष्य को, साधक को सँभाले रखता है, थामे रखता है और पग-पग पर उसके साथ प्रेरणा बनकर खड़ा रहता है। कई बार उसके पैर लड़खड़ाते हैं, डगमगाते हैं, पर उसे फिर से सँभालकर, उठाकर उसका गुरु उसे पुन: उसकी राह पर ला खड़ा कर देता है और अंतत: गुरुकृपा के कारण ही शिष्य ब्रह्मप्राप्ति, ईश्वरप्राप्ति के अपने महान लक्ष्य को, मंजिल को पाने में सफल हो जाता है।

गुरु अपने शिष्य को याचक नहीं, उपासक बनाता है। वह उसे कामनापूर्ति नहीं, मुक्ति का मार्ग दिखाता है। भला शिष्य के लिए, साधक के लिए इतना कृपालु, इतना दयालु गुरु के अलावा दूसरा कौन हो सकता है? गुरु तो करुणा का साक्षात् सागर है, जिसके लिए उसका शिष्य ही सब कुछ है। इसी कारण अपने गुरु द्रोणाचार्य का जो स्नेह, प्यार एक शिष्य के रूप में अर्जुन को मिला, उतना तो स्वयं द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को भी प्राप्त नहीं हो सका।

जिस आध्यात्मिक संपदा को गुरु अपने कई जन्मों की महान साधना के बाद प्राप्त करता है—उसे भी वह अपने योग्य शिष्य को हर्षित होकर हस्तगत करा देता है। इसी आधार पर अपनी महासमाधि के तीन-चार दिन पूर्व श्रीरामकृष्ण परमहंस ने अपनी दिव्यशक्ति अपने प्रिय शिष्य नरेंद्र (स्वामी विवेकानंद) में प्रविष्ट कर दी थी और कहा था—"इस शक्ति के द्वारा तुझसे महान कार्य होंगे और उसके पश्चात ही तू स्वधाम को लौटेगा।"

गुरु अपने शिष्य के कल्याण के लिए क्या कुछ नहीं करता? वह तो अपने शिष्य की खातिर रूठे हुए ईश्वर को भी प्रसन्न कर लेता है। इस सत्य को दरसाने वाली एक

बहुत प्यारी घटना का जिक्र रामचरितमानस में गरुड़ जी एवं काकभुशुण्डि जी के बीच हुए संवाद के रूप में हुआ है, जिसमें काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कह रहे हैं—

एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥
सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥
मंदिर माझ भई नभ बानी।
रे हतभाग्य अग्य अभिमानी॥
जद्यपि तव गुरु कें नहिं क्रोधा।
अति कृपाल चित सम्यक बोधा॥
तदपि साप सठ दैहउँ तोही।
नीति बिरोध सोहाइ न मोही॥
हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥
तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान॥
संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल॥
एहि कर होइ परम कल्याना।
सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी।
एवमस्तु इति भइ नभबानी॥

—उत्तरकांड, रामचरितमानस

अर्थात—काकभुशुण्डि जी कह रहे हैं कि एक दिन मैं शिव जी के मंदिर में शिवनाम जप रहा था। उसी समय मेरे गुरुजी वहाँ आए, पर अभिमान के मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम तक नहीं किया। मेरे गुरुजी तो दयालु थे, इसलिए मेरा दोष देखकर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा, उनके हृदय में मेरे प्रति लेशमात्र भी क्रोध नहीं आया, पर गुरु का अपमान तो बहुत बड़ा पाप है, इसलिए महादेव जी उसे नहीं सह सके।

उसी समय मंदिर में आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य! मूर्ख! अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है, वे अत्यंत कृपालु चित्त के हैं और उन्हें पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान है, तो भी हे मूर्ख! तुझको मैं शाप दूँगा; क्योंकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तुझे अवश्य दंड दूँगा। अरे पापी! तू अपने गुरु के सामने उठ खड़ा होने के बजाय अजगर की भाँति बैठा रहा। अत: जा तू सर्प हो जा। इस प्रकार मेरे लिए शिव जी का भयानक शाप सुनकर मेरे गुरुजी ने हाहाकार कर दिया। मुझे शाप के भय से काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में बड़ा संताप उत्पन्न हुआ। तब प्रेमसहित दंडवत् करके मेरे गुरु भगवान शिव के सामने हाथ जोड़कर मेरी भयंकर गति (दंड) का विचार कर, मुझे शापमुक्त करने हेतु गद्गद वाणी से विनती करने लगे।

वे **नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥**—रुद्राष्टकम् आदि गाकर शिव जी की स्तुति करने लगे। फिर सर्वज्ञ शिव जी ने विनती सुनी और मेरे गुरु का प्रेम देखा। तब मंदिर में आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँगो। तब मेरे गुरुजी ने कहा—"हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ! यदि इस दीन पर आपका स्नेह है तो पहले अपने चरणों की भक्ति देकर, फिर मुझे दूसरा वर दीजिए। हे प्रभो! यह अज्ञानी जीव अर्थात मेरा शिष्य काकभुशुण्डि; आपकी माया के वश होकर निरंतर भूला फिरता है। हे कृपा के समुद्र भगवन्! उस पर क्रोध न कीजिए। हे दीनों पर दया करने वाले शंकर! अब इस पर कृपालु होइए, जिससे हे नाथ! थोड़े ही समय में शाप भुगतकर यह शापमुक्त हो जाए।"

तब दूसरे के हित से सनी हुई ब्राह्मण (मेरे गुरु) की वाणी सुनकर फिर आकाशवाणी हुई—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)। फिर शिव जी ने कहा कि यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दे दिया है तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु हर स्थिति में अपने शिष्य का कल्याण ही चाहते हैं और अपने शिष्य के कल्याण के लिए वो अपना सब कुछ निछावर कर देते हैं। अपने शिष्य से इतनी बेपनाह मुहब्बत गुरु के अलावा दूसरा कौन कर सकता है? जैसे गाय अपने थनों का मीठा-मीठा दूध अपने बछड़े को पिलाने को व्याकुल रहती है, वैसे ही सद्गुरु भी अपने ज्ञान का अमृत अपने सच्चे शिष्य पर लुटाने को बेचैन रहते हैं और जब उन्हें सच्चे शिष्य मिल जाते हैं, तब उनकी प्रसन्नता का भी कोई पारावार नहीं होता। तभी तो जब श्रीराकृष्ण परमहंस ने दक्षिणेश्वर में उनके दर्शन को आए नरेंद्र के रूप में एक सच्चे शिष्य को देखा तब उन्होंने

नरेंद्र का हाथ पकड़ लिया और उन्हें मंदिर के उत्तरी बरामदे में ले गए। नरेंद्र जैसे शिष्य को पाकर उनकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की धार बहने लगी; क्योंकि क्षणभर में ही वे अपने भावी संदेशवाहक को पहचान गए। उनकी आँखों से आँसुओं की धार बहती देखकर नरेंद्र के विस्मय की सीमा न रही।

श्रीरामकृष्ण कहने लगे—"अहा! तू इतने दिनों बाद आया। तू तो बड़ा निर्दयी है रे! इसलिए तो तूने इतनी प्रतीक्षा करवाई। विषयी लोगों की व्यर्थ की बकवास सुनते-सुनते मेरे कान झुलस गए हैं। दिल की बातें किसी को न कह पाने के कारण कितने दिनों से मेरा पेट फूल रहा है।" फिर श्रीरामकृष्ण ने अपने कमरे से कुछ मिठाइयाँ लाकर उन्हें अपने हाथों से खिलाया और उन्हें पुनः दक्षिणेश्वर आने को कहा।

यदि जीवन में हमें सद्गुरु की प्राप्ति हो जाए, सद्गुरु की कृपा प्राप्त हो जाए तो फिर हमारे लिए कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता; क्योंकि सद्गुरु के ज्ञान को पाकर शिष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। आवश्यक यह है कि हम भी एक सच्चे शिष्य हों, समर्पित शिष्य हों, श्रद्धालु शिष्य हों ठीक नरेंद्र की तरह। यदि ऐसा हो सका तो हम भी नरेंद्र की तरह विवेकानंद बन सकते हैं। हम भी अपने गुरु के कृपाप्रसाद के अधिकारी हो सकते हैं। हम भी भवसागर पार कर सकते हैं। ❑

एक राजा के राज्य में सभी सुखपूर्वक रहते थे। उनके राज्य में कभी चोरी नहीं होती थी। यदि कभी कोई चोरी जैसा अपराध कर भी लेता था तो उसे उचित दंड इस तरह दिया जाता था कि उसके व्यक्तित्व का परिष्कार भी होता रहे। राजा के महल में अनेक नौकर कार्य करते थे। उन्हीं में से एक था—गंगू। गंगू का दस वर्ष का एक लड़का था—रामू।

जब दीवान आदि के बच्चे अच्छे कपड़े पहनते, अच्छे विद्यालय में जाते तो उसे देख गंगू को लगता कि मेरे पास इतनी संपत्ति क्यों नहीं है कि मैं भी रामू को अच्छे कपड़े पहना सकूँ और अच्छे कपड़े पहनकर विद्यालय जाते देखूँ। इसी लालच में एक दिन गंगू ने राजमहल से बहुत सारा धन चुरा लिया।

राजा ने घोषणा करवा दी कि जो भी चोर को पकड़कर लाएगा, उसे इनाम दिया जाएगा। रामू अपने पिता को पकड़कर राजा के पास पहुँचा। राजा ने उससे कहा—"तुम इनाम के लालच में अपने ही पिता को पकड़ लाए, अब इनके हाथ काट दिए जाएँगे, परंतु तुमको इनाम मिलेगा।" राजा ने रामू से जब इनाम माँगने को कहा तो वह बोला—"मुझे इनाम में केवल यह चाहिए कि आप मेरे पिता को क्षमा कर दें।" राजा रामू की इस बात से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसके पिता को अभयदान दिया एवं रामू की उचित शिक्षा का प्रबंध किया।

निर्भयता

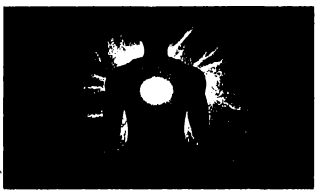

निर्भयता मानवीय गुणों में से एक महान सद्गुण है। सामान्यतया व्यक्ति भाँति-भाँति के भय व चिंताओं से घिरा रहता है। जैसे स्वास्थ्य हानि की चिंता व भय, धन समाप्ति का भय, प्रियजनों के वियोग का भय आदि। चिंता व भय से मन में नकारात्मक तत्त्वों का प्रवेश हो जाता है और इसके कारण फिर हम नकारात्मक सोचने लगते हैं और वस्तु व परिस्थितियों के प्रति नकारात्मक दृष्टि रखते हैं तथा सकारात्मक दृष्टिकोण से दूर भी हो जाते हैं।

जीवन में आगे बढ़ने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण का होना बहुत जरूरी है; क्योंकि यही दृष्टिकोण हमें आगे बढ़ने में मदद करता है; जबकि नकारात्मक दृष्टिकोण हमारे आगे बढ़ने के सभी रास्तों को एक प्रकार से बंद कर देता है। यही कारण है कि जब व्यक्ति भय, चिंता व अवसाद से ग्रस्त होता है तो वह इसी दलदल में धँसता चला जाता है। उसे इन मनोविकारों से बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं मिलता। नकारात्मक दृष्टिकोण की यह दलदल इतनी भयानक होती है कि फिर व्यक्ति आत्महत्या करने को ही एकमात्र समाधान समझता है।

भयभीत, चिंता व अवसाद से ग्रस्त रहना एक अप्राकृतिक बात है। प्रकृति भी नहीं चाहती कि मनुष्य इन मनोविकारों का बोझ आत्मा पर डाले। जीवन में अनेकों ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, जो व्यक्ति को दुविधा अथवा परेशानी में डाल देती हैं। कई परिस्थितियाँ व्यक्ति को शोकग्रस्त कर देती हैं, किंतु इन परिस्थितियों से भयभीत व चिंतित होना अथवा तनाव में आना समस्या का समाधान नहीं होता। भयभीत व चिंतित होकर कभी भी इन परिस्थितियों का सामना नहीं किया जा सकता।

परिस्थितियों का भली प्रकार सामना वे ही कर पाते हैं, जो निर्भय एवं निश्चिंत होते हैं। आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सभी में निर्भयता का गुण अवश्य रहा है। जो व्यक्ति जितना निर्भय होता है, वह उसी मात्रा में महान पथ पर अग्रसर हो पाता है; क्योंकि निर्भयता जीवंत आत्मा का प्रमाण है। वास्तव में जिसने अपने आत्मतत्त्व को जान लिया है, जिसने शाश्वत व अविनाशी तत्त्व को महसूस कर लिया है, वह पूर्णतया निर्भय हो जाता है, लेकिन जो अपने आत्मतत्त्व से कोसों दूर चला गया है, जिसे अपनी आत्मा के अस्तित्व का एहसास ही नहीं है, वह उसके तेज को महसूस नहीं कर पाता। ऐसा मनुष्य बाह्य परिस्थितियों व आंतरिक दुर्बल मन:स्थिति के कारण भयभीत ही बना रहता है।

शंका मन में प्रवेश करते ही वातावरण संदेहपूर्ण बन जाता है और फिर मनुष्य को चारों ओर वही नजर आने लगता है, जिससे वह डरता है। यदि वह अपने मन से भय की भावनाओं को पूर्णतया निष्कासित कर दे तो वह निर्भय होकर सुखी रह सकता है। सदैव आनंदित रहने के लिए भी यह अति आवश्यक है कि हमारा अंत:करण भय की कल्पना से सर्वथा मुक्त रहे।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार—"भय का कारण अज्ञान है, अपने वास्तविक स्वरूप में मनुष्य को सद्ज्ञान से परिपूर्ण व निर्भय होना चाहिए। मनुष्य तो साक्षात् नारायण का पवित्र अंश है—उसके समीप भय कैसे रह सकता है।"

भय से मुक्त होने के लिए साधक को निर्देश देते हुए पूज्य आचार्यश्री ने कहा है—"साधक, उठ! पूर्ण निर्भय हो जा। कायरता के अंधकार से मुक्त होकर, साहस, पौरुष, निर्भयता के सूर्य को देख। यही तेरा प्रकाश है। तू सावधान होकर आत्मतत्त्व के दीपक से ब्रह्मतत्त्व का दर्शन कर—जिसका तू प्रतिबिंब है। भय का अस्तित्व तो अज्ञान में है। तेरे अंत:स्थल में आत्मज्योति जगमग कर रही है, फिर तेरे अंत:करण में भ्रम, शंका, संदेह, चिंता और अनिष्ट प्रसंग कैसे उथल-पुथल मचा सकते हैं? तुझे हीनता का डर नहीं है। निकृष्टता, रोग, ग्लानि, प्रतिकूलता, व्यग्रता तुझे विचलित नहीं कर सकते। तू अपनी कायरता की केंचुली तोड़कर आत्मप्रकाश में जाग। तू अपने अज्ञान को छोड़ मनुष्यत्व को जान और निर्भयता की शांति में उसका विकास कर।" निर्भयता ही अध्यात्म का मूलमंत्र है। ❑

अटल और अकाट्य है कर्मफल विधान

एक सिद्ध महात्मा अपने शिष्य को साथ लेकर तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। मार्ग में प्रकृति के सुरम्य रूप का दर्शन करते हुए वे शिष्य को योग-अध्यात्म संबंधी तत्त्वज्ञान देते हुए आगे बढ़ रहे थे। गुरुवाक्य को आत्मसात् करता शिष्य उनका अनुसरण करता हुआ चला जा रहा था। यात्रा करते अभी वे कुछ ही दूर निकले थे कि जंगल के ऊबड़-खाबड़ मार्ग में किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। जिसे सुन सहायतार्थ वे दोनों उस दिशा की ओर बढ़े।

महात्मा जी ने ध्यान से कराहने की आवाज पर गौर कर उसका पीछा किया तो पाया कि थोड़ी ही दूर पर अवस्थित वृक्ष की लताओं के झुरमुट में छिपकर एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सिर पर एक बड़े भारी पत्थर से प्रहार कर रहा है। इस वीभत्स दृश्य को देख महात्मा जी सहम उठे। उनका हृदय पीड़ित व्यक्ति के प्रति करुणा से भर आया। वे तत्क्षण घटनास्थल की ओर भागे व दूर से ही चिल्लाकर उस निर्दयी को ऐसा करने से रोकने लगे।

घटनास्थल पर उन दोनों के पहुँचने तक काफी देर हो चुकी थी और दुर्भाग्यवश उस व्यक्ति ने अपना दम तोड़ दिया था। उसके लहूलुहान मृत शरीर के निकट खड़ा हत्यारा वहाँ से भागने को तत्पर हुआ, किंतु महात्मा जी को अपने समक्ष देख वह ठिठक गया। मृतक की दुर्दशा को देख महात्मा जी बड़े दु:खी हुए व उस हत्यारे पर क्रोधित हो बरस पड़े—"अरे मूर्ख! यह तूने कैसा अनर्थ कर डाला? क्या तुझे नियंता का तनिक-भी भय नहीं? इस निर्मम हत्या के पीछे आखिर तेरी क्या मंशा थी?"

क्रुद्ध महात्मन् की फटकार सुन वह व्यक्ति घबराया। कुछ देर चुप्पी साधे खड़े रहने के पश्चात थोड़ी हिम्मत जुटा वह अपना पक्ष आगे रख महात्मा जी से अभद्र शैली में कहने लगा—"देखो महाराज! मैंने दो वर्ष पूर्व इस व्यक्ति से कर्ज के रूप में कुछ पैसे लिए थे, किंतु मेरी तंग हालत के चलते मैं उस कर्ज को चुका सकने में असमर्थ था। अत: बड़ी कोशिशों से मैंने बिना सूद के कर्ज की रकम का बंदोबस्त किया और इसे लौटाना चाहा। मेरी बदहाल तंग स्थिति से भली प्रकार भिज्ञ यह दुष्ट सूद के बिना रकम लेने को तैयार ही न हुआ और बारंबार सूदसहित धन वापस करने की जिद पर अड़ा रहा।

"इसके द्वारा दी जा रही निरंतर मानसिक प्रताड़ना से तंग आकर मैंने यह विचार किया कि क्यों न इस व्यक्ति को ही समाप्त कर दिया जाए, तब संभवत: मैं इस झंझट से मुक्ति पा सकूँगा। इसी विचार से मैंने इसे जान से मारने की योजना बनाई। मैं जानता था कि यह नित्य ही इस मार्ग से होकर गुजरता है और शहर जाकर अपनी दुकान चलाता है, सो आज मैं सुबह से ही घात लगाकर बैठा था और यह जैसे ही करीब पहुँचा, मैंने इसे झुरमुट में धकेल पीछे से एक बड़े पत्थर से इसके सिर पर प्रहार कर इसे मार दिया।"

महात्मा जी हत्यारे की मूढ़ता पर अफसोस व्यक्त कर उसे चेतावनी के स्वर में कहने लगे—"अरे मूढ़मति! इतनी-सी बात में प्राणदंड देने वाला तू कौन होता है? तूने यह गलत किया। तुझे इस जघन्य अपराध का दंड अवश्य मिलेगा।"

महात्मा जी की चेतावनी से आतंकित हो वह व्यक्ति भय से काँपने लगा और तत्क्षण महात्मा जी व उनके शिष्य को ठेल वहाँ से भाग निकला। दोनों जब तक सँभल पाते, वह दुष्ट आँखों से ओझल हो गया। नियत कर्मफल-व्यवस्था में हस्तक्षेप करना महात्मा जी को उचित प्रतीत न हुआ, अत: विवश अवस्था में उन्होंने शिष्य को मृतशरीर का आस्थापूर्वक अंतिम संस्कार करने का आदेश दिया व स्वयं शोक प्रकट करने लगे।

कुछ ही देर में यात्रा पुन: प्रारंभ हुई। हाल ही में घटी दुर्घटना को यादकर शिष्य महात्मा जी से पूछने लगा—"गुरुवर! उस हत्यारे ने तो हत्या का घोर अपराध किया है। अत: कर्मफल विधान के अनुसार तो उसे इस निर्मम पाप का दंड अवश्य ही मिलना चाहिए।" शिष्य के कथन पर अपनी मूक सहमति जताते महात्मा जी ने अपना सिर हिलाकर उसकी इस बात पर हामी भरी।

शिष्य कुतूहलवश उनसे आगे पूछने लगा—"उसे इस अपराध का दंड कब तक मिल जाएगा गुरुदेव?"

शिष्य के इस प्रश्न पर महात्मा जी कुछ गंभीर हुए व उसे समझाने लगे—"वत्स! कर्मों का फल तो हर व्यक्ति को भोगना ही पड़ता है। आज उसने जो पापकर्म किया है वह प्रारब्ध बनकर उसके इस जीवन या अगले जीवन में अवश्य ही प्रकट होगा।" कर्म की गति बड़ी गहन है। यात्रा करते हुए दोनों अंततः अपने गंतव्य को पहुँच गए।

वर्षों के लंबे अंतराल के पश्चात दोनों पुनः तीर्थयात्रा पर निकले। संयोग से इस बार भी वे उसी चिर-परिचित वन के मार्ग से जा रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि जंगली झाड़ के समीप एक सर्प और नेवले में लड़ाई हो रही है। साँप फुफकारता नेवले पर प्रहार कर रहा था तो नेवला पलटवार करते हुए उस सर्प के फन को कुचलकर कुतरने के लिए तत्पर था। थोड़े ही समय में नेवले ने उस सर्प के फन को कुतरकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वह सर्प वहीं तड़पकर मर गया। नेवला तत्क्षण ही पास के वृक्ष की ओट में जाकर छिप गया।

इस घटना के साक्षी महात्मा जी शिष्य को उस ओर इंगित कर कहने लगे—"वत्स! देखो यह सर्प जो अभी यहाँ तड़पकर मर गया, आज उसे अपने किए पाप की सजा मिल गई।" शिष्य आश्चर्य व्यक्त करते महात्मा जी से पूछ बैठा—"किसे सजा मिल गई? किस पाप की सजा मिल गई? मैं कुछ समझा नहीं गुरुदेव!" महात्मा जी शिष्य को उस स्थान पर वर्षों पूर्व घटी घटना याद दिलाते हुए कहने लगे—"तुम्हें वह घटना याद होगी न वत्स! जो इस जंगल में घटी थी?" कुछ स्मरण करते शिष्य के मुख से निकला—"हाँ गुरुदेव! वह घटना मुझे भली भाँति स्मरण हो आई है कि किस प्रकार एक व्यक्ति ने एक भारी पत्थर से दूसरे व्यक्ति के सिर पर प्रहार कर उसका प्राणांत किया था।"

महात्मा जी शिष्य की ओर देख मुस्कराए और आगे कहने लगे—"अभी-अभी तुमने जिस सर्प को तड़प-तड़पकर मरते देखा वह कोई और नहीं, बल्कि वही हत्यारा है, जिसने वर्षों पूर्व इस जंगल में एक व्यक्ति की जान-बूझकर हत्या की थी।" शिष्य अपनी सम्मति देता बोला—"हाँ गुरुदेव! वह घटना तो मुझे स्मरण है, किंतु वह नेवला कौन था गुरुदेव?" आँखें मूँदकर कुछ देख महात्मा जी बोले—"वत्स! वह नेवला जिसने इस सर्प को कुतर-कुतरकर मार डाला, वह वही व्यक्ति है, जिसकी हत्या की गई थी।"

शिष्य चकित भाव से गुरुदेव को देखता रहा। महात्मा जी शिष्य के मन में घटनाक्रम को लेकर व्यापी विसंगति का समाधान करते कहने लगे—"कर्मफल का विधान बड़ा अकाट्य व अटल है वत्स! जो जैसा कर्म करता है, उसे उसका फल कभी-न-कभी अवश्य ही भोगना पड़ता है। तुम भी अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का फल भोग रहे हो और मैं भी। समस्त प्राणी अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। कोई सुखी है तो कोई दुःखी। इसलिए मनुष्य के लिए यह अति आवश्यक है कि वह सदैव शुभ कर्म करे।" ❑

शेख फरीद से लोगों ने पूछा—"ऐसा क्यों होता है कि महापुरुष कष्टों में भी मुस्कराते रहते हैं? मंसूर के हाथ-पैर जब काटे गए, उनकी आँखें फोड़ी गईं तब भी वे मुस्कराते रहे।" शेख फरीद ने प्रत्युत्तर में प्रश्न किया—"क्या तुमने सूखा व गीला नारियल देखा है?" सुनने वालों ने सहमति में सिर हिलाया तो शेख फरीद बोले—"जिस प्रकार गीले नारियल में गिरी व खोल परस्पर चिपके रहते हैं, उसी प्रकार सामान्य मनुष्य शरीर से, संसार से चिपटे रहते हैं व थोड़े कष्ट से ही दुःखी हो जाते हैं, परंतु महापुरुष सूखे नारियल की तरह होते हैं। जिस प्रकार सूखे नारियल में गिरी व खोल एकदम अलग होते हैं, वैसे ही महापुरुष शरीर से व वासनाओं से बँधे नहीं रहते। दुःख-कष्ट की घड़ी में भी वे आत्मा के तल पर निवास करते हैं और इसीलिए कष्टों में मुस्कराते रहते हैं।"

परमात्मा सदृश है गुरु

परमात्मा बहुत दूर है, चित्त के पार है, परंतु गुरु पास भी है और दूर भी। परमात्मा तक सेतु बनाना बड़ा कठिन है। गुरु ही वह सेतु है, जो हमें परमात्मा से जोड़ता है। वही शिष्य के लिए परमात्मा शब्द को प्राणवान बनाता है। वास्तव में गुरु परमात्मा की एक झलक है। अपने हाथ हमने प्रार्थना में उठाए हुए हैं और कहते हैं कि अब तुम्हारी मरजी। यह हाथ उठाने का कार्य जीवात्मा परमात्मा के सामने एकदम से नहीं कर सकता; क्योंकि परमात्मा का हमें कोई पता नहीं है।

हम यह नहीं जानते कि वह कहाँ है ? किस दिशा में है ? वह कौन है ? उसे कैसे पुकारें ? उसका नाम क्या है ? उसे क्या कहें ? वह कौन-सी भाषा समझता है ? गुरु के निकट यह काम आसान है। वहाँ से हम जीवन की वर्णमाला सीखते हैं। वहाँ से हम परमात्मा की ओर पहली सीढ़ी लगाते हैं। वह पहला पायदान है; क्योंकि गुरु हमारे जैसा है भी और हमारे जैसा नहीं भी है। कुछ-कुछ हमारे जैसा है और कुछ-कुछ हमारे जैसा नहीं है। कुछ-कुछ हमारे जैसा है और कुछ-कुछ परमात्मा जैसा है। गुरु एक अद्भुत संगम है, जहाँ जीवात्मा और परमात्मा का मिलन हुआ है।

जहाँ तक वह हमारे जैसा है, वहाँ तक तो हम कह सकते हैं कि वह हमें समझेगा। जहाँ वह हमारे जैसा नहीं है, वहाँ से उसकी कृपा आएगी। यही गुरु का चमत्कार है। यही गुरु की महिमा है। गुरु मनुष्य है। ठीक हमारे जैसा। ऐसे ही हाथ-पैर, ऐसा ही मुँह, ऐसी ही आवश्यकताएँ—भोजन, भूख-प्यास, सरदी-गरमी, जन्म-मृत्यु सभी कुछ हमारे जैसा है। वहीं से गुजरा है, उन्हीं राहों से गुजरा है—जहाँ से हम गुजर रहे हैं। उन्हीं अँधेरों में से टटोल-टटोलकर मार्ग बनाया है उसने, जहाँ हम टटोल रहे हैं। वही हमें समझ सकेगा; क्योंकि हम उसकी ही अतीत-कथा हैं। हम उसी की आत्मकथा हैं। जहाँ वह कल था, वहाँ हम आज हैं। जहाँ वह आज है, वहाँ हम कल हो सकते हैं। हम कहते तो हैं परमात्मा शब्द, लेकिन कोई भाव नहीं उठता है भीतर से।

जब तक हम किसी मनुष्य में परमात्मा की झलक नहीं पाएँगे, तब तक हमारे परमात्मा शब्द में कोई प्राण नहीं होंगे। गुरु परमात्मा शब्द को सप्राण करता है। गुरु हमारे जैसा है, इसलिए हम जो कहेंगे—उसे वह समझेगा। समझेगा कि चोरी का मन हो गया था। कीमती चीज रास्ते के किनारे, कोई देखने वाला न था, उठा लेने का मन हो गया था। वह कहेगा ऐसा तो नहीं होना चाहिए, परंतु कोई बात नहीं। चिंता न करो, कुछ घबराने की बात नहीं है। मैं तो इस पार हूँ, तुम भी आ जाओगे।

हमारे जैसा है गुरु, हमारी भाषा समझेगा और ठीक हमारे जैसा नहीं भी है कि निंदा करे और हमारे रोग में रस ले, कुतूहल करे तथा कुरेद-कुरेदकर हमारे भीतर छिपे हुए रहस्यों को जानना चाहे। गुरु तो सिर्फ तटस्थ भाव से, शांत भाव से सुन लेता है। हम जो कहते हैं, उसे सुनकर हमें आश्वासन दे देता है। अपने अस्तित्व से, अपनी उपस्थिति से हमें आश्वासन देता है। हमारे हाथ को अपने हाथ में ले लेता है या हमारे सिर पर अपना हाथ रख देता है और हम अनुभव कर लेते हैं कि उसने क्षमा कर दिया। अगर उसने क्षमा कर दिया तो परमात्मा निश्चित ही क्षमा कर देगा। जब गुरु क्षमा करने में समर्थ है तो परमात्मा की तो बात ही कुछ और है।

गुरु मित्र है। बुद्ध ने तो कहा है—मेरा जो आने वाला अवतार होगा, उसका नाम होगा—मैत्रेय अर्थात मित्र। गुरु सदा से निकटतम मित्र है। कल्याण मित्र। वह हमसे कुछ चाहता नहीं है। उसकी चाहत जा चुकी है। वह अचाह है। हमारा कोई उपयोग करने का प्रयोजन उसका नहीं है। उसे कुछ उपयोग करने को बचा नहीं है। जो पाना था, पा लिया। वह अपने घर आ गया। जो देखना था, देख लिया था, जो होना था, हो लिया। वह सब तरह से तृप्त है। ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए तो सौभाग्य है, लेकिन लोग बड़े उलटे हैं। लोग गुरु से बचते हैं और उनको पकड़ लेते हैं, जो गुरु नहीं हैं; क्योंकि जो गुरु नहीं हैं, उनसे हमें कुछ खतरा नहीं है। जो गुरु नहीं हैं, वे हमें मिटाएँगे नहीं, हमें सूली भी नहीं देंगे, हमें सिंहासन भी नहीं देंगे, वे हमारी मृत्यु भी नहीं बनेंगे। उनके पास से हम झूठी सांत्वनाएँ लेकर घर

आ सकते हैं। सत्य तो वहाँ नहीं मिलेगा। सत्य तो अनमोल है। उसके लिए तो प्राणों से कीमत चुकानी पड़ती है। गुरु के पास सांत्वना मिलेगी, लेकिन यह सांत्वना बड़ी सस्ती है।

गुरु तो दर्पण है। हमारी सूरत हमारे सामने आ जाएगी तो गुरु का काम तो बड़ा कठिन है। उसे हमें हमारी सूरत से मुक्त भी करना है। हम जैसे हैं, वह बताना है और हम जैसे हो सकते हैं, उस तरफ ले जाना है। हमारी निंदा भी हो जाए, पर हमारा आत्मविश्वास न खो जाए—यह बड़ा नाजुक काम है। हमें सँभालना भी है—पर हमें गिरने भी नहीं देना है और हमें सँभालना भी ऐसे है कि हमें ऐसा न लगने लगे कि कोई जबरदस्ती सँभाल रहा है। हमारी स्वतंत्रता भी बचानी है और हमारी सत्य की यात्रा को भी पूरा करना है। सद्गुरु ऐसा ही होता है, जो अपने गर्भ से प्राण-ऊर्जा देकर हमें पोषण देता है, आध्यात्मिक यात्रा के लिए तैयार करता है। ऐसे सद्गुरु से जुड़ने का सौभाग्य हमें मिला है तो इस जीवन में आंतरिक यात्रा पूर्ण कर लेना श्रेष्ठ ही होगा। ❑

माहिष्मती के प्रतापी सम्राट नृपेंद्र का यश पूर्णिमा के चंद्रमा की भाँति सर्वत्र फैल रहा था। राजकोष, सेना, स्वर्ण, सौंदर्य, शक्ति किसी वस्तु का कोई अभाव न था। महाराज नृपेंद्र प्रजावत्सल और न्यायकारी थे। संपूर्ण प्रजा भी उन्हें बड़ी ही श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी।

समय बीता। शक्तियाँ घटीं। शरीर टूटा। वृद्धावस्था बढ़ने लगी और उसके साथ ही नृपेंद्र के अंतर में उद्वेग और क्षोभ छाने लगा। उन्होंने बोलना-चालना बंद कर दिया। किसी से मिलते भी नहीं थे। उदास, बेचैन राजा न जाने किस चिंता में डूबे रहते।

एक दिन बड़े सवेरे सम्राट राज-उद्यान की ओर निकल गए। एक स्फटिक शिला पर पूर्वाभिमुख अवस्थित नृपेंद्र अब भी कोई वस्तु खोज रहे थे। धीरे-धीरे प्रातः का सूर्य उदय हुआ। राजसरोवर में उसकी बालकिरणें पड़ीं और सहस्त्रदल कमल खिलने लगा। धीरे-धीरे कमल पूर्ण रूप से खिल गया और अपना सौरभ सर्वत्र बिखेरने लगा।

आत्मा से आवाज फूटी—क्या तुम अब भी रहस्य नहीं जान पाए कि सूर्य का प्रकाश कहाँ से आता है ? प्रकाश उसका अंतःस्फुरण नहीं है क्या ? कमल का सौरभ उसके भीतर से ही फूटता है। यह जो सर्वत्र जीवन दिखाई देता है, वह सब विश्वात्मा के भीतर से ही फूटता है। आनंद का स्त्रोत तुम्हारे भीतर है, उसे तुम्हें ही जगाना पड़ेगा। उसके लिए आत्मोन्मुख बनना पड़ेगा और साधना करनी पड़ेगी।

योगासनों से समग्र लाभ लें

पतंजलि योग में यम-नियम के बाद आसनों का क्रम आता है। यम-नियम जहाँ मानसिक स्थिरता एवं सामाजिक संतुलन के हेतु हैं, तो वहीं आसन व्यक्ति को स्वस्थ, सबल एवं नीरोग बनाए रखने में सहायता करते हैं। बिना स्वस्थ एवं नीरोग जीवन के योग के धारणा-ध्यान जैसे प्रयोगों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आसन वे शारीरिक मुद्राएँ एवं क्रियाएँ हैं, जो व्यक्ति को सुखपूर्वक लंबे समय तक बैठने में सहायक सिद्ध होती हैं। साथ ही आसनों में ऐसे व्यायाम भी आते हैं जो व्यक्ति को आंतरिक रूप से सबल एवं पुष्ट बनाते हैं और सूक्ष्मग्रंथियों के जागरण में सहायता कर गुप्त रूप से आध्यात्मिक लाभ पहुँचाते हैं। आसनों में कुछ बैठकर किए जाते हैं, कुछ लेटकर तो कुछ खड़े रहकर।

आसनों के इन प्रकारों के अंतर्गत इनकी संख्या को लेकर कई मत हैं। नित नए उभरते इनके रूपों के मध्य इनकी संख्या कुछ सैकड़ों से लेकर हजारों तक पहुँच जाती है। हालाँकि शास्त्रों में सर्वमान्य प्रचलित आसनों की संख्या चौरासी ही मानी गई है। इनकी खोज अधिकांशतः विभिन्न प्राणियों की उन विशिष्ट शारीरिक मुद्राओं के आधार पर हुई है, जब वे शरीर को तानकर या खींचकर शरीर को चैतन्य बनाते हैं। इसी आधार पर विभिन्न आसन कुछ इस प्रकार से नामांकित हैं— कुक्कुटासन, गरुड़ासन, मयूरासन, सिंहासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन, शशांकासन आदि।

यहाँ आसन और पहलवानी कसरतों के बीच अंतर जानना अभीष्ट हो जाता है। आज की पीढ़ी का रुझान आसनों के बजाय वेट ट्रेनिंग एवं बॉडी बिल्डिंग की ओर अधिक है, जिसके लिए वे घंटों जिम में जाकर पसीना बहाते हैं तथा कुछ ही दिनों में उनके शरीर की मांसपेशियाँ उभरने लगती हैं, गठीली हो जाती हैं व प्रदर्शन योग्य हो जाती हैं। शारीरिक गठन हेतु युवावस्था में विशेष रुचि देखी जाती है। यहाँ इनकी कोई बुराई नहीं की जा रही है, लेकिन शरीर सौष्ठव की इन पहलवानी कसरतों के साथ शरीर के कुछ ही हिस्सों, जैसे बाहरी मांसपेशियों का विकास होता है; जबकि आसनों में समग्र रूप में मांसपेशियों का व्यायाम होता है।

इसी कारण से दीर्घकालीन स्वास्थ्य की दृष्टि से आसनों का कोई तोड़ नहीं है। इनके द्वारा शरीर के आंतरिक अंग-अवयवों की भी अच्छी-खासी मालिश एवं कसरत होती है। इसके साथ शरीर में विद्यमान सूक्ष्मग्रंथियाँ एवं चक्र गतिशील हो जाते हैं, जो व्यक्ति को शारीरिक ही नहीं, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ भी देते हैं। इसीलिए योग में आसनों को विशेष महत्त्व दिया गया है।

हालाँकि सभी आसनों को करने की भी आवश्यकता नहीं होती है। अपने शरीर की आवश्यकता, आयु एवं सशक्तता के आधार पर इनका चयन किया जा सकता है। ध्यान के लिए मुख्यतया—पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि को उपयुक्त माना जाता है। इसी तरह शरीर संवर्द्धन एवं सौष्ठव की दृष्टि से पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, भुजंगासन, शलभासन, नौकासन, सिंहासन, सर्वांगासन, नटराजासन आदि आसनों का प्रयोग किया जाता है। शीर्षासन जैसा आसन उपयोगी होने के बावजूद सावधानी की माँग करता है।

अपने समय एवं आवश्यकतानुसार 8-10 आसनों का चयन किया जा सकता है। यदि समय का अभाव हो तो विभिन्न आसनों को एक सुव्यवस्थित समूह के रूप में भी लिया जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव ने प्रज्ञायोग के आसन-व्यायाम के अंतर्गत ऐसे नौ आसनों को लिया है, जो समग्र शरीर की कसरत की आवश्यकता को पूरा करते हैं।

प्रज्ञायोग के आसनों का क्रम इस प्रकार से है— ताड़ासन, पाद-हस्तासन, वज्रासन, उष्ट्रासन, योग मुद्रा, अर्द्धताड़ासन, शशांकासन, भुजंगासन, तिर्यक भुजंगासन, (बाएँ-दाएँ), पुनः शशांकासन, अर्द्धताड़ासन, उत्कटासन, पाद-हस्तासन, ताड़ासन और अंत में मुट्ठियों को कसते हुए बल की भावना के साथ, श्वास छोड़ते हुए सावधान की स्थिति।

आसनों के प्रारंभ में मांसपेशियों एवं घुटनों की जकड़न को दूर करने के लिए वार्म अप कसरतों को किया जा सकता है, जिसके अंतर्गत गरदन, पंजे, घुटने, कमर, कलाई, हाथ, उँगलियाँ, कोहनी, कंधे आदि को क्रमवार लिया जा सकता है और अंत में मांसपेशियों के शिथिलीकरण के अंतर्गत शवासन एवं योगनिद्रा का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रज्ञायोग व्यायाम को हर आयु का व्यक्ति कर सकता है। इसमें सभी प्रमुख अंगों की जकड़न-दुर्बलता दूर होने से शरीर में लोच आती है एवं शक्ति का संचार होता है। परमपूज्य गुरुदेव के निर्देशों में विकसित प्रज्ञायोग की पद्धति में आसनों, मुद्राओं, श्वास-प्रश्वास क्रम तथा शरीर संचालन की लोम-विलोम क्रियाओं का सुंदर समन्वयन है, जो व्यक्ति के तन-मन दोनों के लिए अतीव लाभकारी है। इसी प्रकार सूर्यनमस्कार को किया जा सकता है, जिसमें बारह आसनों का क्रम सूर्य को ध्यान में रखते हुए संपन्न किया जाता है। इसमें श्वास-प्रश्वास की लय के साथ सूर्यमंत्रों एवं चक्रों का ध्यान किया जाता है।

आसन करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना अभीष्ट होता है—

(1) प्रातः सूर्योदय से पूर्व एवं शौच के बाद का समय इनको करने के लिए सबसे उपयुक्त रहता है। अपनी स्थिति के अनुरूप शेष समय निर्धारित किया जा सकता है।

(2) स्नान से पूर्व आधा घंटा या फिर स्नान के बाद का समय आसन करने के लिए उपयुक्त रहते हैं।

(3) श्वास का क्रम आसन करने में विशेष महत्त्व रखता है। श्वास को लेने व छोड़ने की लय अपना एक विशेष प्रभाव डालती है।

(4) आसन के समय खिंचाव या झटके से बचें व इन्हें लय के साथ धीरे-धीरे अपनी शारीरिक क्षमता के अनुरूप करें।

(5) आसन भोजन के पूर्व या फिर भोजन के तीन घंटे उपरांत करें।

(6) आसन शुद्ध हवा में, प्रकृति की गोद में करने का प्रयत्न करें। यदि कमरे में आसन करना हो तो सुनिश्चित कर लें कि वहाँ का परिवेश साफ-सुथरा एवं हवादार हो।

(7) कपड़े कसे हुए न हों, यथासंभव ढीले एवं आरामदायक हों।

(8) आसन के तुरंत बाद कुछ खाने-पीने से बचें। आधे घंटे विश्राम के बाद फल, दूध आदि ले सकते हैं।

(9) आसन-व्यायाम के पूर्ण प्रभाव के लिए आसनों से पूर्व वार्म अप एवं अंत में शिथिलीकरण को अवश्य करें।

(10) संयम, स्वाध्याय, सेवापरायण जीवन का आसन के साथ समायोजन करें। यम-नियम का जितना संभव हो उतना पालन करें।

पूज्य आचार्यश्री के शब्दों में, योग-व्यायाम की जब बात आती है तो लोग सीधे योगासन पर पहुँच जाते हैं। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के रूप में (यम-नियम, आसन-प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान और समाधि) आसन को तीसरे स्थान पर लिया है। यदि यम-नियम का आंशिक पालन भी नहीं किया जाए तो योगासन का उचित लाभ नहीं मिल पाता। यम के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय (चोरी न करना) एवं अपरिग्रह (संग्रह न करना) और नियम के अंतर्गत शौच (स्वच्छता), तप, स्वाध्याय, संतोष और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वरनिष्ठ जीवन) आते हैं। इन यम-नियमों का उल्लंघन करने से आंतरिक जीवन में अनेक ग्रंथियाँ बन जाती हैं, जो स्वस्थ और सुखी जीवन में बड़ी बाधाएँ खड़ी कर देती हैं। स्वस्थ-सुखी जीवन की कल्पना करने वालों को अपने आहार-विहार, चिंतन, चरित्र के बारे में भी जागरूक रहना आवश्यक है।

इस प्रकार आसनों को अपनी आवश्यकता, क्षमता एवं अवस्था को देखते हुए जीवनक्रम का हिस्सा बनाया जा सकता है और योग-साधना का अंग मानते हुए इनसे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से समग्र लाभ लिया जा सकता है। ❑

नास्ति सत्यात् परं तपः।
नानृतात् पातकं परम्॥

अर्थात—सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

साधना के स्वर्णिम सूत्र

स्वामी विवेकानंद श्रीरामकृष्ण परमहंस से ब्रह्म साक्षात्कार करने हेतु बार-बार प्रार्थना किया करते थे। एक दिन अकस्मात् जब उनके पिता की मृत्यु हो गई और घर में उन्हें दारुण दारिद्रय का सामना करना पड़ा तो उन्होंने श्रीरामकृष्ण से कहा कि वे उनके दुःख के निवारण के लिए माँ काली से प्रार्थना कर दें। यह सुन श्रीरामकृष्ण बोले—''तुम स्वयं ही माँ से प्रार्थना क्यों नहीं करते?''

उधर स्वामी विवेकानंद माँ के पास दुःख निवारण के लिए प्रार्थना करने गए; इधर उनके गुरु श्रीरामकृष्ण आदिशक्ति माँ से अपने शिष्य के लिए मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे व बोले—''हे माँ! नरेंद्र को संसार के मायाजाल से बचाए रखना।'' इसलिए गुरुप्रेरणा, गुरुकृपा के कारण ही नरेंद्र माँ काली के पास तीन बार जाकर भी अपने लिए कोई भौतिक सुख न माँग सके, बल्कि तीन बार जाकर भी सिर्फ यही माँगते रहे—'माँ मुझे विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो।'

अपने इस अनुभव का उल्लेख करते हुए बाद में स्वामी विवेकानंद ने कहा था—''मंदिर में पहुँचकर माँ की मूर्ति पर दृष्टि डालते ही मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि माँ चिन्मयी हैं। प्राणवंत हैं। दिव्य और अलौकिक सौंदर्य का शाश्वत स्रोत हैं। भक्ति और प्रेम की उद्दाम तरंगों से मैं अभिभूत हो गया। आनंदातिरेक से विह्वल हो मैं बार-बार उन्हें साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा—'माँ! मुझे विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो, नित्य निरंतर तुम्हारे दर्शन पाता रहूँ, ऐसा आशीर्वाद दो।' मेरी आत्मा में विलक्षण शांति छा गई। संसार विस्मृत हो गया। बस, केवल जगन्माता ही मेरे हृदय में प्रकाशित हो रही थीं।''

सचमुच गुरु अपने शिष्य के कल्याण के लिए क्या कुछ नहीं करते? वे कभी माँ बन शिष्य की उँगली पकड़कर उसे चलना सिखाते हैं तो कभी अंगरक्षक बन उसकी सभी प्रकार से रक्षा करते हैं। कभी कुम्हार बन उसे ठोंक-पीटकर सही आकार देते हैं तो कभी उसे अनुशासित करने के लिए डाँटते भी हैं। कभी उस पर प्रेम की अमृत वर्षा भी करते हैं। शिष्य का भला किसमें है, शिष्य का हित किसमें है, शिष्य का कल्याण किसमें है, शिष्य के लिए क्या उचित है, क्या अनुचित है—इसे सद्गुरु से बेहतर कौन जान सकता है; क्योंकि वे सर्वज्ञ जो हैं, अंतरयामी जो हैं। वे शिष्य के भूत, भविष्य और वर्तमान को एक साथ देख रहे होते हैं; इसलिए वे अपने शिष्य की सब प्रकार से देख-भाल करते हैं। कभी उसे डाँटते, दुत्कारते हैं तो कभी दुलारते और पुचकारते भी हैं।

गुरु के द्वारा शिष्य को मिलने वाली डाँट में कितना दुलार होता है और फटकार में कितना प्यार होता है। इसी प्रकार की एक और भी घटना है, जब ईश्वरदर्शन हेतु नरेंद्र की व्याकुलता की कोई सीमा न रही तब एक दिन उन्होंने ठाकुर से कहा—''मेरी इच्छा है कि तीन-चार दिन तक लगातार समाधि में डूबा रहूँ। कभी-कभी बस भोजन करने के लिए उठूँ।'' ठाकुर ने कहा—''तू तो बड़ी हीनबुद्धि का है रे! उस अवस्था से भी ऊँची अवस्था है। तू ही तो गाया करता है—जो कुछ है, सो तू ही है।'' दरअसल श्रीरामकृष्ण चाहते थे कि उनका शिष्य सभी जीवों में ईश्वर का दर्शन करते हुए पूजा के भाव से उनकी सेवा करे। वे कहा करते थे कि जगत् को ईश्वर से रहित देखना अज्ञान है। ईश्वर को जगत् के परे देखना एक तरह का ज्ञान है, परंतु ईश्वर को सभी जीवों में व्याप्त देखना सर्वोच्च ज्ञान है। केवल कुछ भाग्यवान लोग ही ईश्वर का सर्वव्यापी स्वरूप देख पाते हैं।

वे चाहते थे कि नरेंद्र को इस सर्वोच्च ज्ञान की उपलब्धि हो, इसलिए इस तरह के एक दूसरे अवसर पर भी श्रीरामकृष्ण ने नरेंद्र को कहा—''धिक्कार है तुझे! इतना बड़ा आधार होकर भी तू ऐसी तुच्छ वस्तु माँगता है। मैंने तो सोचा था कि तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा और तेरी छाया में हजारों लोग आश्रय पाएँगे, पर तू तो अपनी ही मुक्ति के चक्कर में पड़ा है।'' झिड़की सुनकर नरेंद्र की आँखों में आँसू आ गए। उन्हें श्रीरामकृष्ण के हृदय की विशालता समझ में आ गई थी।

अपने शिष्य को बीज से वटवृक्ष, नरेंद्र से स्वामी विवेकानंद बनाने की सामर्थ्य तपोनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही

रखते हैं; इसलिए शास्त्रों में ऐसे ही महापुरुषों को गुरु के रूप में वरण करने की बातें कही गई हैं। आचार्य शंकर विवेकचूड़ामणि (33, 34, 35, 36, 37) में कहते हैं कि आत्मतत्त्व का जिज्ञासु शिष्य स्थितप्रज्ञ गुरु के निकट जाए, जिससे कि उसके भवबंधन की निवृत्ति हो। जो श्रोत्रिय हों, निष्पाप हों, कामनाओं से शून्य हों, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हों, ब्रह्मनिष्ठ हों, ईंधनरहित अग्नि के समान शांत हों, अकारण दयासिंधु हों और प्रणत (शरणागत) सज्जनों, के बंधु (हितैषी) हों—उन गुरुदेव की विनीत और विनम्र सेवा से भक्तिपूर्वक आराधना करके, उनके प्रसन्न होने पर उनसे निकट जाकर विनती करें कि—हे शरणागतवत्सल, करुणासागर प्रभो आपको नमस्कार है। संसार सागर में पड़े हुए आप मेरा अपने कृपा-कटाक्ष से उद्धार कीजिए।

इस प्रकार शास्त्रों ने हमें ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाने का निर्देश दिया है; क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही हमें सच्चा ज्ञान दे सकते हैं, सच्ची राह दिखा सकते हैं व ब्रह्म साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। भारतवर्ष की महान आध्यात्मिक संस्कृति में ऐसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं की एक लंबी परंपरा रही है। प्राचीन ऋषियों से लेकर आधुनिक युग के महान योगियों की गणना ऐसे ही तपोनिष्ठ व ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं में की जाती है।

महात्मा गौतम बुद्ध, महावीर, आचार्य शंकर, गुरु गोरखनाथ, मीरा, तुलसी, कबीर, रैदास, चैतन्य महाप्रभु, महावतार बाबा, श्यामाचरण लाहिड़ी, युक्तेश्वरानंद गिरि, परमहंस योगानंद, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी शिवानंद, महर्षि रमण, महर्षि अरविंद, श्रीमाँ, श्री नीब करोरी बाबा, युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य आदि संत व महायोगी निश्चित ही गुरु के रूप में वरण करने योग्य हैं।

वे भौतिक शरीर में आज हमारे मध्य भले ही न हों, पर वे सूक्ष्मरूप में, कारणरूप में, भावरूप में, विचाररूप में आज भी अजर हैं, अमर हैं। उन्हें गुरुरूप में वरण कर, हृदयकमल में उनके प्रकाशशरीर का, प्रकाशपुंज का ध्यान कर, उनके साहित्य का स्वाध्याय कर, उनके बताए मार्ग पर चलकर हम उनकी कृपा, करुणा, मार्गदर्शन व संरक्षण अवश्य ही प्राप्त कर सकते हैं।

ऐसे वीतराग पुरुषों का ध्यान कर हम समाधि जैसे परम लाभ को भी प्राप्त कर सकते हैं। महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र में हमें यही सीख दी गई है—**वीतरागविषयं वा चित्तम्**। अर्थात जिस पुरुष के राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त पुरुष को ध्येय बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात उसके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।

हाँ! यदि हम चाहें तो इन वीतराग पुरुषों के अलावा ईश्वर को भी गुरुरूप में वरण कर सकते हैं। हममें से कई लोगों की श्रद्धा यदि ईश्वर पर अधिक आरोपित होती है तो हम ईश्वर को भी गुरु मान सकते हैं। क्यों? क्योंकि ईश्वर स्वयं अनादि हैं। वे काल की सीमा से सर्वथा अतीत हैं, वे काल के भी महाकाल हैं; इसलिए वे संपूर्ण पूर्वजों के भी गुरु हैं। वे गुरुओं के भी गुरु हैं। जैसा कि महर्षि पतंजलि योगसूत्र 1/26 में कह रहे हैं—**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**। अर्थात वे ईश्वर सबके गुरु हैं, वे पूर्वजों के भी गुरु हैं; क्योंकि उनका काल से अवच्छेद नहीं है। फिर वे पुनः योगसूत्र—1/26, 27 में कहते हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः।
तज्जपस्तदर्थभावनाम्॥

एक आदमी छाया पकड़ने दौड़ा। सूरज पीछे था। छाया आगे-आगे भागती जा रही थी। पकड़ में नहीं आ रही थी। एक ज्ञानी मिले। प्रयोजन समझा और कहा—"अपना रास्ता उलट दो, सूर्य की ओर मुँह करके चलो। छाया पीछे-पीछे दौड़ने लगेगी।" वस्तुतः माया छाया है। ईश्वर सूर्य। माया के पीछे भागने से वह हाथ नहीं आती, पर जब भगवान की ओर मुँह करके चलते हैं तो वह पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। जिसकी इस सिद्धांत पर आस्था नहीं, वह मृगतृष्णा में दौड़-दौड़कर टूट ही जाता है।

अर्थात उस ईश्वर का नाम प्रणव (ॐकार) है। उस ॐकार का जप और उसके अर्थस्वरूप परमेश्वर का चिंतन करना चाहिए।

महर्षि व्यास ने भी ईश्वर को ही परमगुरु कहा है।

ईश्वर प्रणिधानं तस्मिन्
परम गुरौ सर्वकर्मार्पणम्।

—योग भाष्य-2/32

अर्थात उस ईश्वररूपी परमगुरु में समस्त कर्मों का अर्पण ईश्वर प्रणिधान है।

ईश्वर निस्संदेह आदिगुरु हैं, परमगुरु हैं; इसलिए भगवान श्रीकृष्ण गीता—4/1 में कह रहे हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्त वानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

अर्थात श्रीभगवान बोले कि मैंने इस अविनाशी योग का ज्ञान सूर्य को दिया था। सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। भगवान गुरुओं के भी गुरु हैं, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण की वंदना जगद्गुरु के रूप में की गई है—

वसुदेवसुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानंदं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

अर्थात मैं वसुदेवपुत्र देवकी के परमानंद, कंस और चाणूर जैसे दैत्यों का वध करने वाले, समस्त संसार के गुरु भगवान कृष्ण की वंदना करता हूँ।

वहीं गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में भगवान शिव की वंदना कुछ इस प्रकार की है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

अर्थात ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरु की मैं वंदना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से टेढ़ा चंद्रमा भी सर्वत्र वंदित होता है। चित्रकूट के घाट पर संत तुलसीदास जी को भगवान श्रीराम की पहचान हनुमान जी महाराज ने ही कराई थी। ऐसा अनुग्रह तो गुरु ही कर सकता है। संत तुलसीदास जी हनुमान जी महाराज को अपने गुरु के रूप में ही देखते थे। वे हनुमान चालीसा का प्रारंभ भी गुरुवंदना से ही करते हैं—

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।

अर्थात—तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री गुरुमहाराज के चरणकमलों की धूलि से मैं अपने मनरूपी दर्पण को पवित्र करता हूँ।

इस प्रकार हम भगवान श्रीकृष्ण, भगवान शंकर, श्री हनुमान जी महाराज के रूप में ईश्वर को गुरुरूप में अवश्य ही वरण कर सकते हैं, पर शर्त एक ही है कि अपने गुरु के प्रति, अपने आराध्य के प्रति हमारी श्रद्धा अटल हो, अविचल हो, अविराम हो, अखंड हो। हमारा समर्पण सच्चा हो। गुरु के द्वारा दिए गए मंत्र या ईश्वर के नाम-जप में हमारी नियमितता हो, तन्मयता हो।

इन मंत्रों का उच्चारण ही नहीं, वरन उनके संदेशों का हमारे आचरण में उतरना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। हमें उच्चारण मात्र नहीं, वरन आचरण भी तो करना है। उसे अपने जीवन में जीना भी तो है, उतारना भी तो है। हम नाम-जप, उच्चारण कृष्ण का करें और आचरण कंस का तो इससे क्या लाभ? जो इस साधना के सूत्र को स्वीकारते हैं; साधना की फलश्रुतियाँ भी उन्हीं की चेतना में उतरती हैं। सिर्फ बातें बनाने से काम नहीं चलता है। इस संबंध में श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि यदि घर से चिट्ठी आई है और उसके अनुसार दो जोड़ी धोती, एक कुरते का कपड़ा और एक किलो संदेश (मिठाई) भिजवाना है तो फिर वैसा ही करना पड़ेगा। बाजार जाकर यह सामान खरीदकर भिजवाना ही होगा। केवल चिट्ठी पढ़ने या रटने से काम चलने वाला नहीं।

वास्तव में ऐसे आचरण वाले शिष्य, साधक ही अपने गुरु के, भगवान के कृपापात्र बनते हैं। मानसकार के माध्यम से भगवान श्रीराम प्रस्तुत चौपाई में इसकी स्पष्ट उद्घोषणा भी करते हैं—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुसासन मानै जोई॥

अर्थात मुझे तो वह सेवक ही प्रिय है, जो मेरे अनुशासन को मानता है अर्थात मेरे बताए मार्ग पर चलता है।

गीता का ज्ञान पाकर जब अर्जुन की सारी शंकाएँ नष्ट हो गईं तो एक सच्चे शिष्य की तरह उसने भगवान श्रीकृष्ण से कहा कि हे प्रभु! अब मैं आपके वचन का पालन करूँगा।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

—गीता 18/73

अर्थात अर्जुन बोले—हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब

मैं संशयरहित हो गया हूँ, अत: आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। आपके वचन का पालन करूँगा।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमें अपने गुरु के वचनों पर विश्वास होना चाहिए। ऐसा नहीं होने पर हम सपने में भी गुरु की कृपा नहीं प्राप्त कर सकते।

श्रीरामचरितमानस की प्रस्तुत चौपाई में माता भगवती पार्वती इसी सत्य की स्पष्ट उद्घोषणा कर रही हैं—

नारद बचन न मैं परिहरऊँ।
बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुरु कें बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

अर्थात मैं अपने गुरु नारद जी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी चाहे मेरा घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती; क्योंकि जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होते।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने भी साधक व शिष्य के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए तीन सूत्र दिए हैं—उपासना, साधना और आराधना। उपासना अर्थात अपने आराध्य के पास बैठना, उनके सद्गुणों का बारंबार चिंतन-मनन करना। उन्हें अपने जीवन में जीना, उतारना। साधना अर्थात संयम। उपासना से अर्जित ऊर्जा को इंद्रियसंयम से ही संरक्षित कर सकते हैं और आराधना अर्थात उस संरक्षित ऊर्जा का समाजहित में सुनियोजन। साथ ही अपनी प्रतिभा, श्रम, समय व धन का उचित उपयोग, समाजहित में उपयोग। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम कामनापूर्ति नहीं कामना से मुक्ति के लिए अपने गुरु से आध्यात्मिक प्रार्थना करें। यदि हम सचमुच एक सच्चे शिष्य की भाँति, साधक की भाँति साधना के इन स्वर्णिम सूत्रों को अपने जीवन में उतार सकें, जी सकें, पालन कर सकें तो हमारा सर्वोच्च उत्कर्ष सुनिश्चित है, अवश्यंभावी है। ❑

एक विशाल वन में प्रतिवर्ष पक्षियों की प्रतियोगिता हुआ करती थी। उस प्रतियोगिता में सभी पक्षी अपनी-अपनी क्षमता दिखाते। कोयल गाने में, मोर नाचने व सुंदरता में, तोता भाषण में और बगुला नाटक में हमेशा जीत जाते, पर मोरों को इतने में संतोष नहीं होता था। वे बहुत सारे पुरस्कार जीतकर अन्य पक्षियों पर अपनी धाक जमाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपना एक प्रतिनिधि माता सरस्वती के पास भेजा।

मोरों के प्रतिनिधि ने देवी सरस्वती से कहा—"हे देवी! आप तो सर्वसमर्थ हैं। अत: हमें कोयल जैसी आवाज, कबूतर जैसे पैर तथा नीलकंठ जैसा गला दे दें; ताकि हमें अधिक पुरस्कार मिल जाएँ।" उस प्रतिनिधि की बात सुनकर माता सरस्वती बोलीं—"वत्स! भगवान ने सबको अलग-अलग गुण दिए हैं और उनके मौलिक गुणों के कारण ही उनका सम्मान है। इसलिए दूसरे पक्षियों से ईर्ष्या मत करो। शरीर तो भगवान ने बनाया है इसे तो बदला नहीं जा सकता, परंतु स्वभाव तो बदला ही जा सकता है। अपना स्वभाव अच्छा बनाओ तथा गुणी बनो। इससे तुम्हें सबका स्नेह-सम्मान मिलेगा।"

चेतना की शिखर यात्रा —218

राजनीति से हटकर

विगत अंक में आपने पढ़ा कि देश में आपातकाल के दौर में अनेक राजनीतिक दिग्गजों का शांतिकुंज आना हुआ, जिनमें से अधिकांश की दृष्टि भावी चुनाव हेतु गायत्री परिवार के विशाल जनसमर्थन को हासिल करने में होती। इसी सिलसिले में एक केंद्रीय मंत्री द्वारा सूचना दी गई कि प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी स्वयं शांतिकुंज आकर पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद एवं समर्थन चाहती हैं। यह खबर कई बड़े समाचारपत्रों में छपी, जिसमें पूज्यवर को स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एवं महात्मा गांधी का सहयोगी बताया गया, किंतु इस खबर से जनसमुदाय तक कुछ अलग ही संदेश चला गया कि आचार्यश्री स्वाधीनता संग्राम के दिनों में एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्त्ता रहे हैं, अतः आपातकाल की यंत्रणा से त्रस्त जनता में सरकार के प्रति उठे रोष को शांत करने में वे सरकार का सहयोग करेंगे। इस निर्मूल सूचना का स्पष्टीकरण सरकार एवं समाचारपत्रों तक भेजा गया कि आचार्यश्री किसी भी राजनीतिक दल के पक्षधर नहीं हैं, बल्कि उनकी दृष्टि में सभी समान हैं। सरकार द्वारा लगाए आपातकाल से हुई जनता की क्षति से लाभ उठाने के लिए उन दिनों बड़ी राजनीतिक हस्तियों ने संगठित हो तत्कालीन सरकार को चुनौती देने का फैसला किया और साथ ही इस योजना में गति देने के उद्देश्य से गायत्री परिवार से नैतिक सहयोग लेने का सुझाव दिया, परंतु बहुगुणा जी ने उन्हें बताया कि किस प्रकार पूज्यवर ने उन्हें राजनीतिक दायित्वों को भली प्रकार निबाहते हुए अपनी धर्म-भावनाओं के निर्वाह का सत्पथ दिखाया था। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

इस यात्रा से करीब तीन महीने पहले ही हेमवती नंदन बहुगुणा जी ने उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव जीते थे। उनके राजनीतिक प्रभाव का यह आलम था कि समूचा विपक्षी दल एक था और राज्य में कांग्रेस विरोधी माहौल था, लेकिन बहुगुणा जी के नेतृत्व में लड़े गए चुनाव में जीत का सेहरा कांग्रेस के सिर बँधा। चारों तरफ यशोगान होने लगा था। खैर बहुगुणा जी सुनकर और गुरुदेव के कथन के दोनों अर्थ लगाकर वापस आ गए। उनकी इस यात्रा के बाद विधानसभा में बदरीनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार पर चर्चा होनी थी। चर्चा में दोनों ही पक्ष सामने थे। एक पक्ष सरकार द्वारा जीर्णोद्धार कराना चाहता था और दूसरा पक्ष बिड़ला बंधुओं द्वारा मंदिर बनवाने का था।

11 जुलाई, 1974 को विधानसभा में कुछ विधायकों ने प्रस्ताव रखा कि जीर्णोद्धार का काम बिड़ला बंधुओं को सौंप दिया जाए। इस पर जमकर चर्चा हुई। विधायकों ने पक्ष-विपक्ष में दलीलें दीं। चर्चा पूरी होने का समय आया तो हेमवती नंदन बहुगुणा जी उत्तर देने के लिए उठे। हरिद्वार में गुरुदेव से भेंट का दृश्य उनके मानस में कौंध गया और वे बोले कि बिड़ला जी की भावनाओं का हम लोग आदर करते हैं, लेकिन हमारी और इस राज्य की, देश की जनता की भी भावनाएँ हैं। इस मंदिर को तुड़वाकर उसके स्थान पर आधुनिक शैली में निर्माण कराने के वे जरा भी पक्ष में नहीं हैं। बिड़ला जी चाहें तो अरबों रुपये दें और मंदिर बनवाएँ, लेकिन यह कतई नहीं होने दिया जाएगा कि मंदिर की किसी दीवार पर उनका नाम लिखा जाए अथवा बदरीनाथ मंदिर किसी और नाम से पुकारा जाए।

बदरीनाथ का जीर्णोद्धार

बहुगुणा जी जैसे धर्मनिरपेक्ष और उस समय अल्पसंख्यकों की राजनीति को महत्त्व देने वाले राजनेता का यह रवैया आश्चर्यजनक था। फरवरी, 1976 की रैली के

बाद अपने निवास पर नंदिनी सत्पथी से इस प्रसंग की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि विधानसभा में की गई इस घोषणा ने मुझे अचानक निष्ठावान धार्मिक बना दिया। लोग कहने लगे कि मैं धार्मिक स्थलों की शुचिता और स्वायत्तता का प्रबल पक्षधर हूँ। कांग्रेस का एक वर्ग मुझसे नाराज जरूर हुआ कि मैंने उद्योगपति परिवार के मन की नहीं की, लेकिन सहज श्रद्धालु जनों की बधाइयों का ताँता लग गया।

इस वृत्तांत का अगला चरण तो बाकी ही था। उन्होंने श्रीमती सत्पथी से कहा कि बदरीनाथ मंदिर के बारे में तय हो जाने के बाद उनकी लोकप्रियता अचानक बढ़ने लगी। इसलिए नहीं कि उन्होंने मंदिर का निजीकरण नहीं होने दिया। वह प्रसंग तो पीछे छूट गया। भगवान ने कुछ ऐसे काम करा दिए, जिनका प्रकट में तो विशेष महत्त्व नहीं था, लेकिन उनके कारण प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष छवि उभरने लगी।

मंदिर मामलों में पुरातन और पारंपरिक रुख अपनाने के बावजूद मुसलिम जगत् में वे पहचाने, पसंद किए जाने लगे। उस समुदाय का विश्वास बदलने लगा। देश की प्रगतिशील शक्तियों के साथ संपर्क बढ़े और लगा कि राष्ट्रीय स्तर के नेता की छवि उभरने लगी है। करीब डेढ़ साल पहले गुरुदेव द्वारा कही गई कठिन चुनौती मिलने और उतार-चढ़ाव आने की बात दिमाग से उतर गई। वह बात 28 अक्टूबर, 1975 को याद आई, जब कांग्रेस आलाकमान से निर्देश आया कि वे मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दें। उन्हें तत्काल अपने पद से हटना पड़ा।

बहुगुणा जी ने बताया कि इस पद से हटने के बाद उन्हें कोई राजनीतिक जिम्मेदारी नहीं दी गई। उनके क्रियाकलापों पर नजर रखी जाने लगी। देश में जो हालात बन गए थे, उनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता था कि कब तक ये रहेंगे। मन में यह विश्वास तो था कि हालात बदलेंगे तो सही, पर कब बदलेंगे कुछ समझ नहीं आता था। सो अपने मूल निवास चले गए। ज्यादा समय वहीं बिताया। श्रीनगर-पौढ़ी गढ़वाल से पंद्रह-सोलह किलोमीटर दूर अपने पैतृक गाँव बघाणी में बहुगुणा जी हफ्तों रहते और लोगों के दु:ख-दरद में शरीक होते। इस गाँव से हिमालय की नंदा देवी चोटी भी दिखाई देती। जब भी कभी एकांत मिलता तो नंदा देवी को निहारते रहते। गाँव में रहते, बीच-बीच में बाहर आते और कभी-कदा शांतिकुंज भी चले जाते। आने-जाने के दौरान उन्होंने गुरुदेव की लिखी पुस्तकें पढ़ीं।

श्रीमती सत्पथी को यह वृत्तांत बताने के बाद बहुगुणा जी ने कहा कि आचार्यश्री धर्म को राजनीति से दूर रखने के हिमायती हैं। एक अध्यापक छात्रों का अनुरागी, हितैषी और उनके लिए समय, प्रतिभा तथा साधन नियोजित करने वाला होने के बावजूद उनमें घुल-मिल नहीं जाता, उसी तरह धर्मपुरुषों को भी राजनीति में रमना नहीं चाहिए। उनका काम समाज और राजनीति का मार्गदर्शन करना है। उनका हिस्सा बन जाना नहीं। यह वृत्तांत सुनकर श्रीमती सत्पथी चुप हो गई थीं और फिर उन्होंने गुरुदेव के पास किसी समर्थन-सहयोग के प्रयोजन से जाने की बात नहीं कही। इस बारे में कभी सोचा भी नहीं। वही बताया करती थीं कि मैं फरवरी, 1977 के तीसरे सप्ताह में व्यस्त राजनीतिक कार्यक्रमों से समय निकालकर मथुरा जरूर गई थी। वहाँ अपने बारे में किसी को बताए बिना ही गायत्री तपोभूमि गई और मंदिर की सीढ़ियों पर दस मिनट बैठकर प्रार्थना करती रही थी।

राजनीति और धर्मतंत्र के संबंधों को स्पष्ट करते हुए गुरुदेव ने इन घटनाओं से करीब दस वर्ष पहले इस विषय पर विस्तार से लिखा था। अखण्ड ज्योति के पृष्ठों पर छपे और बाद में पुस्तक रूप में भी आए वे आलेख 1976 से 1981 के बीच जैसे आकार लेने लगे। शब्दों ने जैसे शरीर धारण कर लिया और अपने कृत्यों से इस विषय में प्रमाण प्रस्तुत करने लगे।

मार्च, 1977 में हुए आम चुनाव में कुछ संन्यासी भी जीतकर आए। इनमें उत्तर प्रदेश के एक बड़े मठ के महंत और मध्य प्रदेश के एक युवा संन्यासी भी थे। कुछ क्षेत्रों में गायत्री परिवार के अति उत्साही और महत्त्वाकांक्षी कार्यकर्त्ता भी चुनाव लड़े थे। उनमें राजस्थान, गुजरात, बिहार और ओडिशा के कार्यकर्त्ता भी थे। इनमें से सिर्फ तीन कार्यकर्त्ताओं को सफलता मिली। उन्हें गायत्री परिवार के सदस्यों के कारण नहीं, बल्कि क्षेत्र में पहले से की गई सेवाओं, वातावरण और उन दिनों चली लहर के कारण कामयाबी मिली थी।

इस तथ्य से अच्छी तरह वाकिफ नए जनप्रतिनिधि अपनी मार्गदर्शक सत्ता से आशीर्वाद लेने शांतिकुंज आए थे। आशीर्वाद के साथ गुरुदेव ने उन्हें यही निर्देश दिया था कि विदेहराज जनक और भगवान राम के आदर्शों को सामने रखकर काम करना है। इन आदर्शों के अनुसार काम करोगे

तो युगधर्म को भली भाँति निभा सकोगे। वरना जनसेवा को सुख-भोग और यश-विलास का साधन बनाया तो कोई लाभ नहीं होगा। सत्ता और सिंहासन तो आते-जाते रहते हैं।

सेवा कोई भोग नहीं

उन्हीं दिनों उत्तर भारत से चुनकर आए एक संन्यासी विधायक शांतिकुंज आए। घुटनों तक धोती और पाँव में खड़ाऊँ पहने यह महात्मा सप्तसरोवर के किसी आश्रम में ठहरे थे। गायत्री परिवार से वे परिचित तो थे, लेकिन इसकी गतिविधियों में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी। सप्तसरोवर स्थित अपने गुरु के आश्रम में रहते हुए उन्हें विचार आया कि गुरुदेव के दर्शन किए जाएँ। शाम के समय आश्रम से फोन पर बातचीत की और पता चला कि अगले दिन दोपहर दो बजे बाद गुरुदेव से भेंट हो सकती है। जानकर मन प्रफुल्लित हो उठा। रात बीती और सुबह हुई। संन्यासी की सहज आकांक्षा-स्फुरणा के अनुसार वे तड़के पाँच बजे गंगा किनारे पहुँचे। उन स्वामी जी ने जिन्हें सुविधा के लिए पवन स्वामी कहा जाता है, गंगातट पर बैठकर संध्यावंदन और गायत्री जप किया और प्रदक्षिणा के बाद अपने आसन पर बैठ गए। शांत बैठे-बैठे उन्हें ध्यान में प्रवेश का आभास हुआ और देखा कि सामने कुछ बिंब उभर रहे हैं। उन बिंबों के अनुसार एक योगी हाथ में वीणा लिए संस्कृत के पदों का गायन कर रहा है। पदों को ध्यान से सुनने की कोशिश की तो बोध हुआ कि ये वाल्मीकीय रामायण में 'बालकांड' के श्लोक हैं।

आर्ष रामकथा में इन प्रसंगों या छंदों में विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते समय रास्ते की घटनाओं का वर्णन था। आगे-आगे विश्वामित्र और उनके पीछे राम-लक्ष्मण चले जा रहे थे। दोनों ने पीठ पर तरकश बाँधे रखे थे। हाथों में धनुष लिए इन भाइयों के कटिप्रदेश में तलवारें भी लटक रहीं थीं। अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर सरयू के दक्षिण तट पर विश्वामित्र ने राम से कहा—''अब तुम इस नदी-जल से आचमन करो। मैं तुम्हें बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध विद्याएँ सिखाऊँगा। इनके प्रभाव से तुम्हें न कभी थकावट का अनुभव होगा और न ही चिंता के कारण किसी तरह का कष्ट। (पवन स्वामी ने इस पद से अर्थ लगाया कि चिंता और तनाव तो स्वाभाविक हैं। उनका होना अवश्यंभावी है। बला-अतिबला नामक विद्याओं से उनके कारण होने वाली क्लांति और थकान को मिटाया जा सकता था) इन विद्याओं को सिद्ध कर लेने के बाद रात को सोते समय भी तुम पर आसुरी शक्तियाँ आक्रमण नहीं कर सकेंगी।'' महर्षि नारद आगे गा रहे थे कि ब्रह्मर्षि विश्वामित्र से ये विद्याएँ सीखकर श्रीराम और लक्ष्मण सहस्र सूर्यों से सुशोभित शरत्कालीन सूर्य के समान शोभा पाने लगे।

देवर्षि का गायन आगे बढ़ता है। उसमें विश्वामित्र सहित श्रीराम और लक्ष्मण के सरयू संगम के पार जाने और पास स्थित आश्रम में ठहरने, फिर ताड़का वन में पहुँचने, ताड़का का वध करने और उसके बाद ऋषि द्वारा श्रीराम को दिव्य अस्त्र देने के प्रसंगों का वर्णन था। विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचकर यज्ञ की रक्षा और राक्षसों के संहार के प्रसंग थे। इन प्रसंगों का रामायण में आए क्रम के अनुसार पाठ या गायन किया जाए तो कम-से-कम दो घंटे का समय लगता है, लेकिन पवन स्वामी को यह दृश्य देखने और अनुभव करने में पाँच मिनट का समय भी नहीं लगा। यों कहें कि इससे भी कम समय में जितनी देर आँखें बंद किए बैठे रहे, उतनी देर में सब कुछ अनुभव कर लिया।

दृश्य इतना मनोरम था कि उस प्रवाह को आगे भी देखने की इच्छा जगी। आँखें बंद कीं तो लगा देवर्षि नारद वीणा हाथ में लिए खड़े हैं और कुछ कह रहे हैं। सुनने की चेष्टा की तो पाया कि वे 'बला' और 'अतिबला' विद्याओं के बारे में कह रहे हैं। उन्हें बीच में ही टोककर स्वामी जी ने पूछा—''मेरी जिज्ञासा अलग ही है देवर्षि कि महर्षि विश्वामित्र तो स्वयं क्षत्रिय-कुल में जन्मे थे। उन्होंने अपने बल से नई सृष्टि की रचना तक शुरू कर दी थी और त्रिभुवन को जीत लिया था। उन्हें कई शस्त्रों और दिव्य आयुधों का ज्ञान था। वे उनके संधान में समर्थ थे। उनका प्रयोग करने के स्थान पर उन्होंने राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को क्यों माँगा?''

देवर्षि के भावशरीर ने पवन स्वामी को उत्तर दिया कि आपके इन प्रश्नों का उत्तर कल सुबह ही मिलेगा स्वामी जी। वही महापुरुष समाधान देंगे, जिनसे आप मिलने जाएँगे। मेरा समाधान तो यही है कि ऋषिस्तर पर आने के बाद व्यक्ति राजपुरुष नहीं रह जाता। उसके अंतस् में जो आलोक उत्पन्न हो जाता है, वह मार्ग दिखाता है—यात्रा नहीं करता। सूर्य और धर्म का एक नाम आदित्य भी है, आदित्य अर्थात जो आलोकित करें। (क्रमशः)

व्यक्तित्व विकास का साधन है आत्ममूल्यांकन

हमारी रुचि और प्रवृत्ति सदा दूसरों के जीवन में ताक-झाँक करने में रहती है। हम प्राय: दूसरों का मूल्यांकन किया करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि हम दूसरों से बराबरी करने लगते हैं—जिससे मानसिक विकार पैदा होते हैं। अच्छा हो कि हम दूसरों की जगह स्वयं का मूल्यांकन करें। स्वयं का मूल्यांकन या आत्मविश्लेषण एक ऐसा दृष्टिकोण होता है, जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहायता के बिना अपने व्यक्तित्व को समझ सकता है।

स्वयं का मूल्यांकन करे बिना हम प्रगति के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ सकते हैं। यह एक सच्चाई है कि वास्तविक मूल्यांकन होना ही स्वयं का मूल्यांकन है; क्योंकि व्यक्ति सही माने में केवल अपने आप को ही जानता है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू, व्यवहार, प्रवृत्ति एवं भाव को दूसरे के गुणों से ज्यादा अच्छे तरीके से जानता है।

मानसिक विकारों से बचाव के लिए जरूरी है कि समय-समय पर हम स्वयं का आकलन करते रहें। शरीर से जुड़ी कोई परेशानी होती है तो अक्सर हमें उसके बारे में पता चल जाता है। मसलन बुखार आता है तो बदन तपने लगता है। चोट लगती है तो दरद होता है। घाव होता है तो दिखता है, लेकिन मानसिक बीमारियों की गिरफ्त में हम कब फँस जाते हैं, यह हमें पता ही नहीं चलता।

आत्मचिंतन और आत्ममूल्यांकन के जरिए मानसिक समस्याओं की पहचान की जा सकती है। किसी भी तरह की मानसिक समस्या की निशानदेही के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है अपनी आदतों पर गहराई से गौर करना। जब भी किसी दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व व व्यवहार के बारे में विचार करें और किसी निष्कर्ष पर पहुँचें तो हमें कुछ पल रुककर उन्हीं कसौटियों पर खुद के व्यक्तित्व को भी आँकना चाहिए।

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो एक व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य कई जटिल अंतरवैयक्तिक और सामाजिक प्रक्रियाओं के गत्यात्मक पहलुओं पर निर्भर करता है, लेकिन यदि व्यक्ति चेतना के स्तर पर थोड़ा प्रयास करे तो खुद को मानसिक तौर पर स्वस्थ रख सकता है। खुद की दूसरों की तुलना, जलन, चिढ़न, लालच जैसे भाव लगातार इनसान के चिंतन का हिस्सा बने रहने पर उसकी मनोदशा के सहज हिस्से की तरह लगते हैं।

एक तय सीमा तक इन भावों की मौजूदगी नुकसानदेह नहीं होती है, लेकिन जब हम इस तरह के मनोभावों के प्रति बाध्यता महसूस करने लगें व चाहकर भी इस तरह की मनोदशा से बाहर न निकल सकें तो हमें सतर्क हो जाना चाहिए। अच्छाई-बुराई में विभेद न कर पाने वाली मानसिक स्थिति हमें मानसिक असंतुलन की ओर ले जाती है—जिसकी परिणति के रूप में मानसिक रोग एवं मनोविकार; जैसे—अवसाद, उन्माद और उद्दंडता जन्म लेते हैं। आमतौर पर दूसरों का मूल्यांकन एवं विश्लेषण करने वाले लोग नकारात्मक पहलुओं का ही मूल्यांकन करते हैं और असंतुलित मानक तय कर दूसरों की खुद के साथ तुलना करने लगते हैं।

अंतत: यह असंतुलित मूल्यांकन व्यक्ति को जीवन के उस मोड़ पर ले जाता है कि जहाँ से मुड़ना आसान नहीं होता है। जिनसे वह खुद की तुलना करता है वे लोग उससे कमतर होकर भी ज्यादा कामयाब होते हैं। ऐसे में वह उन लोगों से बराबरी करने, उनसे आगे निकलने के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाने लगता है। कभी भी इस बात का स्पष्ट मूल्यांकन नहीं करता कि जिन लोगों से वह खुद की तुलना कर रहा है, वह उनका पक्षपाती मूल्यांकन कर रहा है और उसके मूल्यांकन में आत्ममूल्यांकन का अभाव है।

इस असंतुलित मनोदशा में वह उन लोगों की मेहनत और तमाम दूसरे सकारात्मक गुणों पर ध्यान नहीं देता। इस तरह की स्थिति के बारे में अत्यंत सटीक भाव हैं, जैसे—'कर्महीन नर पावत नाहि' एवं 'जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।'

जाग्रत होने और कर्मनिष्ठ होने का अर्थ यही है कि जब चिंतन करें तो जाग्रत अवस्था में करें। चेतना को संज्ञान

से जोड़कर वस्तुनिष्ठता के साथ सोचें और दूसरों की अपेक्षा खुद के बारे में ज्यादा विचार करें। अत: हमें किसी व्यक्ति का हमारे प्रति व्यवहार अच्छा न लगा हो तो सीधे तौर पर उसे दोषी मान लेने से पहले उस व्यक्ति के प्रति खुद के व्यवहार का ही आकलन करें। इस तरह की आदतें आखिर में हमारी सबसे बड़ी दुश्मन साबित होती हैं।

हमें अपने मन का मालिक होना चाहिए, लेकिन अपनी कमजोरियों के कारण हम अपने मस्तिष्क के दास या गुलाम बन जाते हैं, जो कि हमें आत्मविश्लेषण या स्व-मूल्यांकन को करने से रोकता है एवं हमें दूसरों के मूल्यांकन को करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। कमजोर व्यक्ति हमेशा दूसरों का मूल्यांकन या विश्लेषण करते हैं; जबकि मजबूत व्यक्ति आमतौर पर स्वयं का मूल्यांकन करते हैं। हमें यह समझने की जरूरत है कि हमारे जैसा कोई नहीं है।

हम ईश्वर की बहुमूल्य कृति हैं। हमारी अपनी मौलिकता है, जो हमें औरों से भिन्न करती है। हमें किसी के जैसा नहीं, बल्कि जैसे हैं, वैसा ही बनना चाहिए। हमें स्वयं की दूसरों से तुलना नहीं करनी चाहिए। हम जैसे हैं, वैसे ही ठीक हैं और यदि हमें और अच्छा बनना है तो स्वयं का मूल्यांकन करके अपनी कमियों एवं खामियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार ही हमारा व्यक्तित्व विकसित हो पाता है। व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए आत्ममूल्यांकन की अत्यंत आवश्यकता है। ❑

शाम हुई मनसुखा घर लौटे। उस दिन भगवान कृष्ण गौएँ चराने नहीं गए थे। उनका जन्मदिवसोत्सव था। घर में पूजा थी, यशोदा ने उन्हें घर में ही रोक लिया था। गोप-बालकों ने पूछा—"मनसुखा तुम अनन्य भक्त और सखा हो गोपाल के, फिर आज कृष्ण ने तुम्हें प्रसाद के लिए नहीं पूछा। तुम तो कहते थे गोपाल मेरे बिना अन्न का ग्रास भी नहीं डालते।"

"हाँ-हाँ ग्वालो! ऐसा ही है, तुम्हें विश्वास कहाँ होगा? कन्हाई तो आज भी मेरे पास आए थे। आज तो उन्होंने मुझे अपने हाथ से ही खिलाया था।"

"यह झूठ है।" यह कहकर गोप-बालक कृष्ण को पकड़ लाए और कहने लगे—"लो मनसुखा! अब तो कृष्ण सामने खड़े हैं, पूछ ले इन्होंने तो आज देहलीज के बाहर पाँव तक नहीं रखा।" कृष्ण ने गोप-बालकों का समर्थन किया और कहा—"हाँ-हाँ मनसुखा! तुम्हें भ्रम हुआ होगा, मैं तो आज बाहर निकला तक नहीं।" मनसुखा ने मुस्कराते हुए कहा—"धन्य हो नटवर! तुम्हारी लीलाएँ अगाध हैं, पर क्या तुम बता सकते हो कि यदि आज तुम मेरे पास नहीं आए तो तुम्हारा यह पीतांबर मेरे पास कहाँ से आ गया? देख लो न अभी भी मिष्टान्न का कुछ अंश इसमें बँधा हुआ है।" ग्वालों ने पीतांबर खोलकर देखा—वही भोग, वही मिष्टान्न जो पूजागृह में था, पीतांबर में बँधा था। मनसुखा को वह कौन देने गया, किसको पता था? यह है लीला कान्हा की।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 139

प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण का मूल्यांकन

बच्चों की उचित शिक्षा और सही मार्गदर्शन का संबंध उनके भविष्य के साथ-साथ परिवार, समाज और राष्ट्र के भविष्य से भी जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि प्रारंभिक शिक्षा को सदैव महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्राचीनकाल में यह उत्तरदायित्व ऋषियों द्वारा गुरुकुलों के माध्यम से निभाया जाता था, जिसमें विद्यार्थी के व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित बनाने वाली शिक्षण-प्रक्रियाएँ सम्मिलित थीं।

जीवन के आरंभ में ही शिक्षा के साथ-साथ मूल्यों, आदर्शों, कर्त्तव्यों आदि की जानकारी एवं प्रेम, सेवा, त्याग, उदारता, साहस, विनम्रता जैसे मानवीय गरिमा को सुशोभित करने वाले गुणों का शिक्षण-प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। ऐसी समग्रतापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने वाला विद्यार्थी अपने कर्म, आचरण और व्यवहार से स्वयं के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने के साथ-साथ देश, समाज और संस्कृति के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता था।

हमारी इस अतीत की गौरवपूर्ण शिक्षा-प्रणाली और मानव कल्याण में इसके अमूल्य योगदान की तुलना वर्तमान की शिक्षा-व्यवस्था से करते तो घोर निराशा और हताशा की अनुभूति स्वतः उभर आती है। वर्तमान की शिक्षापद्धति में बच्चों के लिए समग्रता का अभाव है व साथ ही यह दिशाहीनता, एकांगीपन, व्यावसायिकता, भ्रष्टाचार जैसी विसंगतियों के बोझ से दबकर लड़खड़ा रही है। प्राथमिक शिक्षा जो कि बच्चों के साथ-साथ पूरे समाज और राष्ट्र के भविष्य का भी निर्धारण करती है—आज बच्चों में उत्पन्न समस्याओं का प्रमुख कारण बनती जा रही है। विद्यालयों का वातावरण स्पर्धापूर्ण, तनावपूर्ण और भय उत्पन्न करने का माध्यम बन रहा है जिससे बच्चे आगे चलकर अनेक मनोसामाजिक समस्याओं का शिकार हो रहे हैं।

ऐसे में प्राथमिक शिक्षा में व्यापक सुधार की अत्यंत आवश्यकता है, ताकि हमारी नई पीढ़ी का शिक्षण उचित रीति-नीति से सही दिशा में अग्रसर हो सके। इस दिशा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किया गया है।

इस शोध में प्राथमिक विद्यालयीन शिक्षण से संबंधित समस्याओं और उनके समाधान के प्रयासों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए प्रायोगिक विधि से कुछ सार्थक उपायों को प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यह शोध अध्ययन प्राथमिक स्कूलों की शिक्षण-प्रक्रिया में गुणवत्ता मूल्यांकन और उपयोगिता को बढ़ाने पर केंद्रित है, तथापि इसमें प्राथमिक शिक्षण-व्यवस्था की विसंगतियों और प्रचलित पाठ्यक्रम एवं अध्यापन प्रक्रियाओं की कमियों को सामने लाने तथा सही दिशा में प्रयासों के कदम बढ़ाने की प्रेरणा भी मौजूद है।

यह शोधकार्य सन्—2018 में शोधार्थी सुश्री माधवी सैनी द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ. ममता अरोरा के निर्देशन में पूरा किया गया है। प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ कन्टिन्यूअस एंड कॉम्प्रिहेन्सिव इवेल्यूएशन ऑन एकेडमिक परफार्मेन्स ऑफ स्टूडेंट ऑफ प्राइमरी स्कूल्स' (प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षणिक योग्यता पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का प्रभाव)**।

इस प्रायोगिक अध्ययन को पूरा करने के लिए शोधार्थी ने उत्तराखंड राज्य के रुड़की ब्लॉक के अंतर्गत बीस से अधिक शासकीय प्राथमिक विद्यालयों का भ्रमण कर उनमें से चार विद्यालयों का शोधकार्य हेतु चयन किया। चारों में पढ़ने वाले बच्चों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भाषा, जनसंख्या आदि पक्षों में समानता को भी आधार बनाया गया।

इन विद्यालयों से आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा 200 विद्यार्थियों का प्रयोग हेतु चयन किया गया, जिनकी आयु 11 से 13 वर्ष के मध्य थी। प्रयोग आरंभ करने से पूर्व सभी चयनित विद्यार्थियों की शोधार्थी द्वारा निर्मित शोध-उपकरणों के माध्यम से शैक्षणिक निष्पादन-क्षमता की जानकारी प्राप्त की गई। इस अध्ययन के लिए शोधार्थी ने उपकरण के रूप में प्रयुक्त प्रश्नोत्तरी 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन तथा सहयोगी उपकरण के रूप में 'स्व-मूल्यांकन चार्ट' व 'निरीक्षण चार्ट' का उपयोग किया।'

अध्ययन में सम्मिलित प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों का अध्यापन शोधार्थी द्वारा पारंपरिक तरीके से विशेष प्रक्रियाओं के माध्यम से किया गया। 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन' के अंतर्गत अपनायी गई शिक्षण-प्रक्रिया में पाठ्यक्रम के साथ-साथ खेल, संगीत, नृत्य, पेंटिंग आदि गतिविधियों एवं प्रतियोगिताओं में भी विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित की गई और विजेताओं का पुरस्कार आदि से उत्साहवर्द्धन भी किया गया। प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर सभी प्रतिभागियों का पुनः परीक्षण किया गया।

परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का शोधार्थी द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि पारंपरिक अध्यापन एवं मूल्यांकन-प्रक्रिया की तुलना में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अपनायी गई प्रक्रिया का विद्यार्थियों के शैक्षणिक निष्पादन एवं अन्य व्यक्तित्व विकास संबंधी पहलुओं पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि इस शोध अध्ययन में परिणाम के रूप में जो सार्थक और सकारात्मक प्रभाव विद्यार्थियों के जीवन में देखा गया, उसके पीछे मुख्य कारण शोधार्थी द्वारा अपनायी गई सतत और व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया है।

यह स्कूलों में अपनाई जाने वाली पारंपरिक अध्ययन-अध्यापन एवं मूल्यांकन-प्रक्रिया के स्थान पर नई तकनीकों, प्रक्रियाओं एवं खेल आदि गतिविधियों के संयोजन से युक्त ऐसी अध्यापन एवं मूल्यांकन की अवधारणा को पुष्ट करती है, जिससे बच्चे अपने पाठ्यक्रम को रुचिकर तरीके से सीख सकें, उनके आत्मविश्वास और निष्पादन-क्षमता में वृद्धि हो तथा मौजूदा शिक्षण-प्रक्रिया से उत्पन्न डर, तनाव व अन्य समस्याओं से ग्रसित न होकर उनका व्यक्तित्व संतुलित एवं समग्र विकास की ओर अग्रसर हो।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की विधि में शोधार्थी ने जिन विशेष तकनीकों एवं प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया है, वे इस शोध परिणाम के आधार पर प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र के लिए लाभकारी एवं उपयोगी साबित हुई हैं। इन प्रक्रियाओं में से कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु निम्नानुसार हैं—

—सर्वप्रथम अध्यापक को पाठ्यक्रम से संबंधित विषय के संबंध में विद्यार्थियों को जो जानकारी है—उसका आकलन करना चाहिए। इसके पश्चात पढ़ाए जाने वाले शीर्षक या पाठ के नाम का उल्लेख कर उसके प्रति जिज्ञासा एवं प्रेरणा उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए।

—पाठ को पढ़ाने के लिए चॉक, बोर्ड, चार्ट, चित्र आदि विषय से संबंधित शिक्षण सामग्री का उपयोग करना चाहिए।

—पाठ पढ़ाने के उपरांत कक्षा में विद्यार्थियों से उस पाठ के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को पूछना चाहिए तथा उत्तर न पाने पर पुनः समझाना चाहिए। अलग-अलग बच्चों से पाठ के अलग-अलग प्रश्न पूछे जाने चाहिए, ताकि पाठ के मुख्य प्रश्नों का अभ्यास भी हो सके।

—विद्यार्थियों द्वारा ठीक से जिन प्रश्नों के जवाब दिए गए हों, उस हेतु उनका उत्साहवर्द्धन करना चाहिए एवं प्रेरित करने वाली प्रक्रिया अपनानी चाहिए व साथ ही जिन बच्चों को उत्तर देने में समस्याएँ हैं, उन्हें व्यक्तिगत सहायता प्रदान करनी चाहिए।

—मूल्यांकन हेतु चार्ट तैयार कर अथवा आवश्यक गृहकार्य देकर उसके माध्यम से प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति, विशेषताओं एवं दी जा सकने वाली आवश्यक सहायता को जानना चाहिए।

—कक्षा का वातावरण मैत्रीपूर्ण एवं रुचिकर बनाए रखना चाहिए, ताकि अध्ययन-अध्यापन का कार्य प्रभावशाली हो सके।

—अध्यापन में पुस्तक में दिए गए उदाहरणों के अतिरिक्त भी विद्यार्थियों के निजी व दैनिक जीवन से जुड़े उदाहरणों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

—विद्यार्थी की त्रुटि का समाधान उससे व्यक्तिगत रूप से परामर्श करके आवश्यक सुधार की बातों को उसकी नोटबुक में लिख देना चाहिए।

—कक्षा में अनुशासन बनाए रखने के लिए सकारात्मक एवं रचनात्मक गतिविधियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

—पाठ्यक्रम में सहयोगी गतिविधियों के रूप में खेल, संगीत, चित्रकारी, स्वच्छता का अभ्यास, नृत्य, गान आदि अनेक रोचक, रचनात्मक एवं ज्ञानवर्द्धक प्रक्रियाओं को अपनाया जाना चाहिए।

—समय-समय पर स्व-मूल्यांकन प्रक्रिया के द्वारा बच्चों को स्वयं की अच्छी आदतों, कमियों, रुचियों एवं अनुशासन संबंधी बातों को समझने तथा जरूरी सुधार की प्रेरणा एवं अवसर देना चाहिए।

—स्वच्छता, स्वास्थ्य एवं अच्छे व्यवहार के लिए विद्यार्थियों को नियमित रूप से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

—विद्यालय, अध्यापक एवं विद्यार्थियों के बीच शिक्षा की गरिमा के अनुरूप जिम्मेदारी, स्नेह और अपनत्व का विकास हो, इसके लिए एक सौहार्दपूर्ण वातावरण चाहिए।

विद्यालयी शिक्षा में यदि उक्त बिंदुओं को सम्मिलित कर लिया जाए तो बच्चों की सीखने की क्षमता में वृद्धि के साथ ही उनके संपूर्ण जीवन पर ऐसी शिक्षण एवं मूल्यांकन-प्रक्रिया का बहुआयामी एवं व्यापक सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। प्राथमिक स्तर पर ऐसी व्यापक और समग्र शिक्षण-प्रक्रिया की वर्तमान में अत्यंत आवश्यकता है।

❑

महाकवि भवभूति रचित उत्तररामचरितम् का एक मार्मिक प्रसंग है। श्रीराम राक्षसों का दमन करके अयोध्या वापस लौट आए थे। रामराज्य की स्थापना की जा चुकी थी। महर्षि वसिष्ठ के मार्गदर्शन में राजतंत्र एक आदर्श व्यवस्था का प्रयोग कर रहा था। उसी बीच शृंगी ऋषि ने एक विशेष यज्ञ का अनुष्ठान किया। कार्य की महत्ता देखते हुए महर्षि वसिष्ठ ने उस यज्ञ के संरक्षण का दायित्व स्वीकार कर लिया। शृंगी ऋषि उनके जामाता भी थे। यज्ञ की अवधि लंबी पड़ने पर महर्षि वसिष्ठ को अयोध्या की चिंता हुई। उन्होंने श्रीराम को एक व्यक्तिगत संदेश लिखा—

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धाः, त्वं बाल एवाऽसि नवं च राज्यम्।
युक्तं प्रजानामनुरंजनेस्याः, तस्माद् यशः यत्परमं धन वः॥

***अर्थात**—हम जामातृ के यज्ञ में रुककर रह गए हैं। तुम बालक जैसे ही हो और राज्य नया-नया है। प्रजा के कल्याण का विशेष ध्यान रखना, उससे युक्त रहना। उसी में तुम्हारा यश है और हमारे लिए वही सर्वश्रेष्ठ संपत्ति है।*

भगवान राम ने महर्षि का संदेश पढ़ा। विचार किया—"ऋषि ने आदेश दिया है कि लोक-कल्याण से युक्त रहना।" ऋषि के संकेतों को जीवनसूत्र मानते हुए उन्होंने आश्वासन भरा उत्तर लिखा—

स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य, मुञ्चतो नाऽस्मि मे व्यथा॥

***अर्थात**—'लोक-आराधना के लिए यदि मुझे स्नेह, दया, सुख यहाँ तक कि जानकी जी का भी त्याग करना पड़ जाए तो भी मुझे व्यथा नहीं होगी।' उक्त घटनाक्रम में रामराज्य का वास्तविक सार-संदर्भ समाहित है। वास्तव में रामराज्य जैसी आदर्श व्यवस्था अन्य किसी संस्कृति में संभव नहीं। वसिष्ठ जैसे तत्त्वज्ञ, निस्पृह ऋषि स्तर के विचारक उसके लिए व्याकुल होकर जागरूकता से मार्गदर्शन करें तथा राम जैसे चरित्रनिष्ठ, मनोबलसंपन्न, आदर्शवादी व्यवस्थापक उनके निर्देशों को क्रियान्वित करने के लिए कटिबद्ध हों, तभी वह स्वप्न साकार हो सकता है।*

आपत्तियों का सामना करें धैर्य एवं साहस के साथ

आपत्तियाँ एवं कठिनाइयाँ जीवन का स्वाभाविक अंग हैं, जो धूप-छाँह एवं दिन-रात की भाँति हमारे जीवन में आती-जाती रहती हैं, लेकिन जब ये आती हैं तो हम इनका सामना कैसे करते हैं; इनसे कैसे निपटते हैं; इनके प्रति हमारी प्रतिक्रिया क्या रहती है—इसके आधार पर हमारे जीवन की दशा-दिशा निर्धारित होती है। यदि हम एक सजग जिज्ञासु की भाँति धैर्य एवं साहस के साथ इनका सामना करते हैं, इनसे आवश्यक सबक लेते हुए आगे बढ़ते हैं तो जीवन के ये विकट पल हमें जीवन जीने की कला का महत्त्वपूर्ण शिक्षण देकर जाते हैं अन्यथा ये हमें तोड़कर, जीवन में कटुता का समावेश कर, अस्तित्व के तार को और उलझाकर जाते हैं।

सामान्य क्रम में आपत्तियों के आने पर व्यक्ति घबरा जाता है; उसके हाथ-पैर फूल जाते हैं; कई तो रोना-धोना तक शुरू कर देते हैं। लगता है कि भगवान ने हमारे ऊपर यह कैसी बिजली गिरा डाली। व्यक्ति अपना होश खो बैठता है; किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है और इनसे बचने या इनको टालने का यथासंभव प्रयास करता है, लेकिन जब ये चली जाती हैं और इनका समय बीत जाता है तो फिर इन्हीं को यादकर व्यक्ति हँसता है। इनकी कथा-गाथाओं को व अपने साहस के किस्सों को बड़े मनोरंजन के साथ आनंद लेते हुए अपने मित्र-दोस्तों, नाती-पोतों के बीच में सुनाता है।

वास्तव में किसी भी आपत्ति के आने पर व्यक्ति का आशंकित मन अपने स्वभाव के अनुरूप चीजों को बढ़ा-चढ़ाकर देखने लगता है। यदि व्यक्ति अस्पताल में भरती है तो आशंकित मन छोटी-सी बीमारी या किसी अंग-अवयव के कष्ट के इर्द-गिर्द कल्पना का जाल बुनना शुरू कर देता है। बुरे-से-बुरे विकल्पों के बीच मन झूलने लगता है। कल्पना की इस उड़ान को आस-पास के रोगी हवा दे जाते हैं, जो किसी तरह की पीड़ा से कराह रहे होते हैं। ऐसे में व्यक्ति का मन अनहोनी के भयंकर विचारों में उलझ जाता है कि पता नहीं कहीं मेरे साथ भी ऐसा ही कुछ तो नहीं होने वाला?

सब कुछ चिकित्सक के हाथों में व उनकी पूरी देख-रेख में चल रहा होता है। इधर-उधर ध्यान देने के बजाय यदि जितना कहा गया है, उतना ही करा जाता, अपने स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित रखते तो कुछ और बात होती। इसके बजाय आशंकित मन बेसिर-पैर की ऊल-जलूल कल्पनाओं में उलझ जाता है, जो अपने साथ नकारात्मक विचारों का पूरा अंधड़ लेकर आती हैं; जिनको थामना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में व्यक्ति भय एवं उद्विग्नता से इतना चिंतातुर हो जाता है कि ऐसी बीमारी न होने पर भी कल्पित बीमारी के लक्षण प्रकट होने शुरू हो जाते हैं।

ऐसा ही अन्य किसी विपरीत परिस्थिति, आपत्ति एवं कठिनाई भरे पलों में होता है। जबकि यदि व्यक्ति सकारात्मक विचारों के साथ धैर्य का दामन थामते हुए वर्तमान में जी रहा होता; अपना श्रेष्ठतम प्रयास करते हुए बुरी-से-बुरी परिस्थिति के लिए तैयार रहता तो पाता कि आशंकित मन:स्थिति की नब्बे फीसदी कल्पनाएँ आधारहीन थीं; जिनमें हम व्यर्थ ही अपना समय, स्वास्थ्य एवं मनोयोग गँवाते रहे।

वास्तव में कठिनाइयों एवं आपत्तियों के प्रति हमें हमारी सोच बदलने की आवश्यकता है। हमारे जीवन में कठिनाइयाँ हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए आती हैं। ये हमारा प्रारब्ध काटती हैं और हमारे संचित कर्मों का बोझ हलका कर हमारे जीवन को और भी बेहतर बनाती हैं।

इनके साथ हमारे संचित पापों का भार हलका होने के साथ हमारी अंतश्चेतना शुद्ध एवं निर्मल हो जाती है, इसके साथ ही हमारी अंत:शक्तियों का जागरण भी होता है, जो सामान्य परिस्थितियों में तंद्रावस्था में रहती हैं। कठिन समय इनको झकझोरकर हमारी उन्नति में इनका सहायक बनता है। इस तरह ये एक तरह से ईश्वर की ओर से उपहारस्वरूप होती हैं, जो हमारी बेहोशी, अज्ञानता, आलस्य, अहंकार, जड़ता और व्यामोह को नष्ट करने आती हैं।

वास्तव में दु:ख व कष्ट एक तरह के हंटर का काम करते हैं, जो हमारी शिथिल पड़ी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों को भड़काकर हमें क्रियाशील बनाते हैं और साथ

ही हमें धर्माचरण की शिक्षा देकर सही राह पर चलना सिखाते हैं।

अत: कठिनाइयों में अपने धैर्य व संतुलन को खोने के बजाय साहसपूर्वक इनका सामना करने में ही समझदारी है। कठिनाइयों में न तो दु:खी होने की आवश्यकता है, न घबराने की और न किसी पर दोषारोपण करने की, बल्कि हर आपत्ति के बाद नए साहस और उत्साह के साथ उस परिस्थिति से जूझने और प्रतिकूलता को हटाकर अनुकूलता को उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है। ऐसे में मन को सतत यह विश्वास दिलाते रहें कि यह विषम समय भी बीत जाएगा।

ऐसे में ईश्वरविश्वास एक महान अवलंबन साबित होता है। उसके विधान में कुछ भी अमंगल नहीं हो सकता। वह सर्वसमर्थ है, सर्वांतर्यामी है। वह विपत्ति में भी सतत हमारे साथ है। यह दृढ़ विश्वास ऐसी छोटी-छोटी परिस्थितियों का निर्माण करता है, ऐसे सहयोग को जुटाता है, ऐसी सोच को संभव बनाता है कि विपत्तियों को व्यक्ति धैर्य एवं साहस के साथ पार कर जाता है। ऐसे पलों में मानसिक जप, इष्ट सुमिरन या शास्त्रोक्त स्तोत्र का पारायण बहुत सहायक सिद्ध होता है। यह एक सकारात्मक मनोभूमि को बनाए रखता है और नकारात्मक विचारों के विरुद्ध एक तरह से मजबूत रक्षाकवच का निर्माण करता है।

इस तरह आपत्तियों से चिंतित न हों तथा प्रत्येक परिस्थिति में आगे बढ़ते रहें। अपने धैर्य को स्थिर रखते हुए सजगता, बुद्धिमत्ता, शांति और दूरदर्शिता के साथ कठिनाइयों से पार निकलने का प्रयास करें। आप पाएँगे कि हर विषम परिस्थिति के बाद हम अधिक निखार के साथ, अधिक सशक्त बनकर बाहर निकल रहे हैं। बुरे दिन तो निकल जाएँगे लेकिन साथ ही वे अनेकों अनुभव, सद्गुण, सहनशक्ति एवं सूझ का वरदान देकर जाएँगे। किसी ने सही कहा है कि कठिनाइयाँ व्यक्ति को जितना सिखाकर जाती हैं, उतना दस गुरु मिलकर भी नहीं सिखा सकते।

वास्तव में जिन महापुरुषों को आज हम प्रेरणास्रोत के रूप में देखते हैं, अनुकरणीय मानते हैं, वे कठिनाइयों की पाठशाला में उत्तीर्ण होकर ही इसके अधिकारी बन सके। वे दु:ख, कष्ट, आपत्ति एवं प्रतिकूलता की भट्ठी में तपकर ही कुंदन बनकर निखरे और अपनी आभा के साथ युग को प्रदीप्त कर गए।

जिसका जीवन जितना अधिक सुख-सुविधाओं एवं अनुकूलताओं की गोद में पला-बढ़ा, उसकी नैसर्गिक क्षमताएँ उतनी ही प्रसुप्त रह गईं और उनका जीवन उतना ही हलके में निकल गया; जबकि विपत्तियों की प्रयोगशाला में ही महान व्यक्तित्वों का विकास होता है, जिनका वे सहर्षता से वरण करते हैं।

कितनी ही उच्च आत्माएँ, तपरूपी कष्ट को अपना परम मित्र और विश्वकल्याण का मूल समझकर उसे स्वेच्छापूर्वक छाती से लगाती हैं। वे दु:खों के आने पर अधीर नहीं होते और उन्हें प्रारब्ध कर्मों का बोझ समझकर प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं। विकट समय निकल जाता है, लेकिन तप की अग्नि से प्रदीप्त इनका कालजयी व्यक्तित्व युग-युगांतरों तक संघर्षशील व्यक्तियों के लिए प्रेरक शक्ति का काम करता है। ❑

हमने अपना सारा जीवन जिस मिशन के लिए तिल-तिल जला दिया, जिसके लिए हम आजीवन प्रकाश-प्रेरणा देते रहे, उसका कुछ तो सक्रिय स्वरूप दिखाई देना ही चाहिए। हमारे प्रति आस्था और श्रद्धा व्यक्त करने वाले क्या हमारे अनुरोध को भी अपना सकते हैं ? क्या हमारे पद्चिह्नों पर कुछ दूर चल सकते हैं ? हम देख सकें कि हम सच्चे साथियों के रूप में परिवार का सृजन करते रहे अथवा शेखचिल्ली जैसी कल्पना के महल गढ़ते रहे। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

भोजन-का परिरक्षण

खान-पान हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है और इसीलिए इसका लगातार प्रचार होता है व इसमें समय-समय पर बदलाव भी आते रहते हैं। खान-पान की अहमियत को समझते हुए देश के अधिकांश लोगों ने इसे अपने रोजगार से जोड़ लिया है और इसीलिए देश में तरह-तरह के महँगे व सस्ते होटल, ढाबे, खाने के ठेले आदि चलते हैं और अच्छी कमाई करने के साथ-साथ ये अपने बेहतर स्वाद के लिए भी मशहूर होते हैं।

खान-पान से संबंधित बाजार में सामग्रियों की तो भरमार है और हर सामग्री के विभिन्न प्रकार हैं। आमतौर पर घर में किसी खाने के सामान को अधिक दिनों तक संगृहीत नहीं किया जा सकता। वह खराब हो जाता है और उसमें स्वत: ही कीड़े पनप जाते हैं, जो उसे खा लेते हैं और उसे खराब कर देते हैं; इसलिए घर में संगृहीत की जाने वाली सामग्रियों को बीच-बीच में देखना होता है कि वे खराब तो नहीं हुई हैं।

यदि खाद्य सामग्रियाँ, जैसे—अनाज, साबुत मसाले आदि खराब हो रहे हैं, उनमें कीड़े पड़ रहे हैं तो उन्हें साफ करके धूप में सुखाना होता है, लेकिन कुछ खाद्य सामग्री जैसे चावल आदि को धूप में सुखाया नहीं जाता; इसलिए इन्हें संरक्षित करने के लिए नीम की पत्तियों, लौंग, सरसों का तेल आदि का प्रयोग किया जाता है, ताकि ये समय के साथ खराब न हों और इनका लंबे समय तक प्रयोग किया जा सके। इसके साथ ही घरों में संगृहीत किए जाने वाले अचार आदि को भी बीच-बीच में देखना होता है कि कहीं ये खराब तो नहीं हो रहे।

जहाँ घरों में कोई भी खाद्य सामग्री मुश्किल से संगृहीत होती है तो वहीं बाजार में कम समय में तैयार होने वाले खाद्य पदार्थ के ऐसे पैकेट बिकते हैं, जो पैकेट की सील खोलने से पहले खराब नहीं होते और कई खाद्य सामग्री तो सील खोलने के बाद भी खराब नहीं होतीं, लेकिन इन सभी खाद्य पदार्थों की एक निर्धारित समय सीमा होती है, जो उन पैकेटों में अंकित होती है। पैकेट या डिब्बे में बंद सामग्रियाँ खराब नहीं होतीं; क्योंकि इनमें प्रिजर्वेटिव्स मिलाए जाते हैं; हालाँकि ये स्वास्थ्य की दृष्टि से नुकसानदायक हैं और इससे संबंधित कई शोध भी हुए हैं, लेकिन इनके बिना खाद्य पदार्थ का बाजार चलना मुश्किल है। इसलिए इनका प्रयोग खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने हेतु किया जाता है।

घरों में प्रयोग किए जाने वाले नमक, चीनी, सिरका, एल्कोहल, मसाले, तेल आदि में भी परिरक्षण (प्रिजर्वेटिव) का गुण होता है; इसलिए अचार, जैम आदि बनाने में इनका प्रयोग किया जाता है, लेकिन ये परिरक्षक पदार्थ नहीं कहे जाते हैं। भारत में फल उत्पाद आदेश (फ्रूट प्रोडक्ट्स आर्डर 1955, संशोधित 1980) के अंतर्गत दो परिरक्षकों को ही फल और सब्जी उत्पाद में मिलाने की अनुमति है और इन्हें मिलाने की मात्रा भी निर्धारित है—(1) बेंजोइक अम्ल और उसके लवण तथा (2) सल्फर-डाइऑक्साइड और उसके लवण।

परिरक्षण हेतु बेंजोइक एसिड (C_6H_5COOH) को उसके लवण सोडियम बेंजोएट ($C_7H_5NaO_2$) के रूप में उपयोग किया जाता है। सोडियम बेंजोएट की जल में घुलनशीलता बेंजोइक एसिड की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है, इसलिए सोडियम बेंजोएट का उपयोग अधिक किया जाता है। प्रतिकिलोग्राम में एक ग्राम से अधिक सोडियम बेंजोएट की मात्रा का प्रयोग करने पर खाद्य पदार्थ बेस्वाद हो जाता है।

मान्यता प्राप्त दूसरे परिरक्षक—सल्फर-डाइऑक्साइड को रस में मिलाना कठिन होता है, इसलिए सल्फर-डाइऑक्साइड के सल्फाइट (SO_3), बाइसल्फाइट (HSO_3) और मेटाबाइसल्फाइट (S_2O_5) के सोडियम और पोटैशियम लवण अधिकांशत: प्रयोग में लाए जाते हैं और इन लवणों में भी पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट का अधिकांशत: प्रयोग किया जाता है। चूँकि सल्फर-डाइऑक्साइड या बेंजोइक एसिड के लवण या अन्य परिरक्षक विषैले रसायन होते हैं, अत: इनकी समुचित मात्रा सावधानी से तौलकर ही पेय पदार्थों में मिलाने की अनुमति है।

इस तरह परिरक्षक पदार्थ न केवल खाद्य पदार्थों में, बल्कि दवा की गोलियों व सिरप आदि में भी मिलाए जाते हैं। बाजार में जो भी बोतलबंद, पैकेटबंद शरबत, जूस, स्क्वैश आदि मिलते हैं, उन सबमें परिरक्षक मिले होते हैं।

देखा जाए तो समय के साथ खान-पान का तरीका बदलता रहता है। बाजार में नित नए उपकरण, खान-पान संबंधी सामग्रियाँ आती हैं, लेकिन जब उनके नुकसान के बारे में पता चलता है तो फिर उनमें बदलाव होने लगता है और यही कारण है कि अब खान-पान के बाजार को लेकर लगातार अध्ययन हो रहे हैं।

हर दिन का सेहतमंद खान-पान सभी के लिए एक बड़ा मुद्दा है और इसलिए इसका बड़ा बाजार भी है। यह बाजार हमें रोज इस मुद्दे पर कुछ नया, कुछ ज्यादा परोसता रहता है, ताकि जिंदगी में वक्त की कमी का असर हमारी सेहत पर न दिखने लगे, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि कहीं हम इसके कारण खान-पान के मामले में बाजार के हाथों की कठपुतली तो नहीं हो गए हैं?

उदाहरण के लिए—एक या दो दशक पहले नॉन-स्टिक का जमाना आया, जो गृहिणियों को बहुत सुविधाजनक और सेहतमंद प्रतीत हुआ; क्योंकि उसके प्रचार का असर ही कुछ ऐसा था कि लोग उसके फायदे देखने लगे, लेकिन शोध अध्ययनों से जब उसमें भोजन पकाने के नुकसान सामने आए तो लोग फिर से स्टील की नई तकनीक से तैयार बरतनों को लेने की सलाह देने लगे। प्राय: घरों में भोजन पकाने व भोजन रखने हेतु पीतल, ताँबा, ग्लास, स्टील, लोहे व मिट्टी के बरतन प्रयुक्त होते हैं।

ताँबे में 97 और स्टील में 75 फीसदी तक खाने के पोषक तत्त्व सुरक्षित रहते हैं, लेकिन ताँबे के बरतनों में दूध, दही, मक्खन नहीं रखा जाता। इसी तरह लोहे के बरतन, जैसे—लोहे की कड़ाही, तवा आदि भोजन बनाने हेतु तो प्रयोग किए जाते हैं और इनमें बना हुआ भोजन पौष्टिक व आयरन तत्त्व से युक्त होता है; लेकिन इसके बरतनों में खाना पकाने के उपरांत ठंढा होने के लिए नहीं रखा जाता; क्योंकि लोहा, पानी के संपर्क में देर तक आने पर जंग बनाने लगता है, इसलिए भोजन पकाने व भोजन रखने हेतु बरतनों का चुनाव ऐसा हो जो खास खाद्य पदार्थ से मिलकर उसे जहरीला न बनाए।

इसी तरह बाजार में आजकल भाँति-भाँति के रिफाइंड तेलों की भरमार है। लोग इन्हें खरीदते हैं, इनका प्रयोग करते हैं। विगत दशकों में घरों में भोजन बनाने हेतु शुद्ध घी, नॉन रिफाइंड शुद्ध सरसों का तेल, मूँगफली का तेल, तिल का तेल आदि का प्रयोग किया जाता था। नॉन रिफाइंड तेलों के मुकाबले रिफाइंड तेल पारदर्शी एवं हलका होता है। आजकल शोध अध्ययन यह बता रहे हैं कि तेल को रिफाइंड करने हेतु जिन रसायनों का प्रयोग किया जाता है, वो हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इस तरह एक बार फिर से लोग नॉन रिफाइंड तेलों की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

आधुनिक जीवनशैली में वे ही तेल अच्छे हैं, जो दिल की सेहत के लिए ठीक हों अथवा जिनमें पॉली और मोनो अनसैचुरेटेड फैट्स हों। ऑलिव ऑयल मोनो अनसैचुरेटेड फैट्स का अच्छा स्रोत है और यह रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को संतुलित रखता है, इसलिए इसका चलन बढ़ रहा है। स्वास्थ्य की दृष्टि से कोल्हू या मशीन से निकाला गया शुद्ध सरसों, मूँगफली, नारियल, तिल का तेल उत्तम माना गया है। रासायनिक तत्त्वों द्वारा रिफाइन किया गया या किसी भी प्रकार का रिफाइन तेल स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है, इसलिए जहाँ तक संभव हो इसके प्रयोग से बचना चाहिए।

भोजन पकाने हेतु पहले एकमात्र साधन चूल्हे व अँगीठी थे, फिर गैस आई। धीरे-धीरे हीटर, माइक्रोवेव, इंडक्शन चूल्हे आदि आए, जिन पर लोग खाना बनाने लगे। इन उपकरणों में भोजन कम-से-कम समय में यथाशीघ्र पक सकता है, लेकिन भोजन बनाने के संबंध में शोध अध्ययन एक बार फिर से 'धीमे से भोजन पकाने' को स्वास्थ्य की दृष्टि से फायदेमंद बता रहे हैं और इसके लिए बाजार में बाकायदा विशेष बरतन भी महँगे दामों पर उपलब्ध हैं।

आजकल पानी को शुद्ध करने वाली उन्नत आर.ओ. तकनीक पर भी प्रश्नचिह्न लगने लगे हैं और एक बार फिर से पानी को शुद्ध करने के देशी तरीके अपनाने पर लोग जोर दे रहे हैं। यही कारण है कि पानी को शुद्ध करने के देशी तरीकों से बनाई जाने वाली तकनीकों से युक्त मशीनों का तेजी से प्रचार हो रहा है।

इस तरह देखा जाए तो रसोई और खान-पान का चलन हर कुछ सालों बाद प्रश्नों के घेरे में आ जाता है। हम

इसके चलते खान-पान में बदलाव करते रहते हैं और परेशान होते रहते हैं। निश्चित रूप से हर चलन को हम अपनी मरजी से अपनाते हैं, पर इस बात पर ध्यान ही नहीं देते कि खान-पान में एक सेहतमंद चीज अपना भी ली तो इससे क्या फायदा; क्योंकि हमारी बाकी की रसोई के सामान उसी ढर्रे पर होते हैं, जिस ढर्रे पर खान-पान का बाजार प्रचारित होता है।

उदाहरण के लिए, दिल व दिमाग दोनों के लिए बादाम फायदेमंद है, लेकिन इसके प्रयोग के लिए इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि दिल की सेहत के लिए सिर्फ बादाम के भरोसे नहीं रहा जा सकता। इसका उपयोग यदि व्यायाम और सादे खान-पान की दिनचर्या के साथ किया जाए, तो यह फायदेमंद है और इसके खाने की भी एक निर्धारित सीमा है, जिस पर ध्यान न देने से इसे ग्रहण करने पर फायदे के बजाय नुकसान हो सकता है।

बात केवल खान-पान और बरतन की ही नहीं है, बल्कि रसोई की बनावट और खाना बनाने के तौर-तरीकों की भी है, जिनका एक बड़ा बाजार है। समय के साथ जैसे-जैसे फ्लैट और छोटे घर बनने लगे तो खड़े होकर खाना बनाने हेतु मॉड्यूलर किचन का चलन भी तेजी से प्रचारित हुआ। एक सर्वे के अनुसार—भारतीय मॉड्यूलर किचन का बाजार सन् 2018 में करीब 14.5 अरब रुपये का हो चुका है और यह बढ़ोत्तरी निरंतर जारी है, लेकिन आज भी स्वास्थ्य के विशेषज्ञ बैठकर खाना बनाने और जमीन पर बैठकर खाना खाने के पारंपरिक तरीके को ही सर्वश्रेष्ठ बताते हैं।

तरह-तरह के आकर्षणों से भरे हुए खान-पान संबंधी प्रचारों के बीच हम क्या चुनें और क्या न चुनें; यह तो हम पर ही निर्भर है, लेकिन यह जरूरी है कि हम उचित का चुनाव सोच-समझकर करें। बाजार की सब चीजें खराब नहीं होतीं, लेकिन हमें भी सोच-समझकर ही उन्हें अपनी रसोई में जगह देनी चाहिए।

हमें यह समझना होगा कि खान-पान और रसोई किसी क्षेत्र विशेष की जलवायु के हिसाब से विकसित होते हैं। जो मिर्चदार खाना रेगिस्तान के घरों में ठीक रहेगा, वह शायद गंगा-यमुना के मैदान की जलवायु में रहने वालों के लिए उतना सेहतमंद न रहे। दक्षिण भारत में जहाँ चावल व इमली से बने हुए भोजन का विशेष महत्त्व है; क्योंकि वहाँ गरमी अधिक पड़ती है, वहीं उत्तर व मध्य भारत के भोजन में गेहूँ के आटे से बने व्यंजनों, दालों व सब्जियों को अधिक पसंद किया जाता है।

भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण क्षेत्र में उगने वाले फलों, सब्जियों और यहाँ तक कि अनाजों व मसालों में भी भिन्नता है, लेकिन खान-पान का बाजार इसे सभी तक सुगमतापूर्वक पहुँचा देता है। हमारी सेहत के लिए क्या जरूरी है और क्या नुकसानदायक है—इस बात का ध्यान रखते हुए ही हमें खान-पान के बाजार का लाभ लेना चाहिए। ❑

राजा ऋषभदेव 100 पुत्रों के पिता थे। उन्होंने यह व्यवस्था कर दी थी कि उनकी मृत्यूपरांत ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाए और शेष पुत्र गृह त्यागकर संन्यासी हो जाएँ। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर वरिष्ठ पुत्रों ने संन्यास ले लिया। बाहुबलि को यह निर्णय स्वीकार नहीं हुआ। उसने भरत के साथ ज्ञान की प्रतियोगिता रखवाई। उसमें वह जीत गया। इससे भरत को ईर्ष्या हुई।

उसने बाहुबलि को युद्ध के लिए ललकारा। बाहुबलि ताकतवर था। उसने जैसे ही भरत को मारने के लिए हाथ उठाया, उसे यह विचार आया कि यदि मैंने अपने भाई के प्राण लेकर राजगद्दी सँभाली तो राज्य की जनता यही कहेगी कि जो राजा बनने के लिए अपने भाई का खून कर सकता है, वह जनता की सेवा क्या करेगा? वह महत्त्वाकांक्षा को त्यागकर भरत को राजगद्दी सौंपकर मानवता की सेवा हेतु चल पड़ा और तीर्थंकर कहलाया।

युगगीता – 246

दंभी, अभिमानी, क्रोधी व कठोर होते हैं आसुरी व्यक्तित्व

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभाग योग नामक सोलहवें अध्याय की चौथी किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के तीसरे श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस अध्याय के पहले, दूसरे एवं तीसरे श्लोक में श्रीभगवान दैवी प्रकृति से युक्त व्यक्तियों के लक्षणों का वर्णन करते हैं। अभय, सत्य, अंतःकरण की शुद्धता, ज्ञान के लिए योग में दृढ़ स्थिति, दान, दया, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, अक्रोध, सत्य, शांति एवं करुणा जैसे गुणों को प्रथम एवं द्वितीय श्लोकों में बता देने के बाद भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे भरतवंशी अर्जुन! तेज, क्षमा, धैर्य, शुचि, अद्रोह, मान की चाहत का मन में न होना—ये सभी गुण भी दैवी संपदा से युक्त महापुरुषों की पहचान हैं। सहज, स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति अहर्निश तप, स्वाध्याय, सत्य जैसे गुणों में लीन हो, जिसके भीतर वाणी व कर्म की सरलता, अहिंसा, करुणा जैसे लक्षण सदा विराजमान हों, उसके मुखमंडल पर तप का तेज देदीप्यमान हो ही जाता है।

तेज के गुण के बाद श्रीभगवान क्षमा को भी दैवी लक्षणों में गिनते हैं। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति के प्रति भी जिसने उनके विरुद्ध कोई अपराध किया हो—उसके प्रति उनके मन में कोई आक्रोश या प्रतिशोध का भाव नहीं होता, वरन वे तब भी उनके भले के लिए ही सोचते अथवा प्रयत्न करते हैं। यह भाव, क्षमा का भाव है। तेज व क्षमा के बाद योगेश्वर कृष्ण, धैर्य व धृति को अगला दैवी गुण बताते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन में विपत्ति, दुःख या कष्ट आने पर तनिक भी विचलित नहीं होते, वरन स्थिरचित्त रहते हैं। धृति का लक्षण भी दैवी संपदा का ही प्रतीक है। तेज, क्षमा, धैर्य के अतिरिक्त श्रीभगवान शरीर, मन व विचारों की शुद्धता, शुचिता, अपने साथ शत्रुता का व्यवहार करने वाले के प्रति जरा भी द्वेष या शत्रुता के भाव के न होने, मन में मान की आकांक्षा न होने के गुण को भी दैवी लक्षणों में गिनाते हैं। इस प्रकार इस अध्याय के प्रथम तीन श्लोकों में श्रीभगवान दैवी संपदा से युक्त महापुरुषों का वर्णन प्रस्तुत करते हैं।]

इतना कह चुकने के बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥ 4॥

शब्द विग्रह—दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च, अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सम्पदम्, आसुरीम्।

शब्दार्थ—हे पार्थ! (**पार्थ**), दंभ, (**दम्भः**) घमंड (**दर्पः**), और (**च**), अभिमान (**अभिमानः**), तथा (**च**), क्रोध (**क्रोधः**), कठोरता (**पारुष्यम्**), और (**च**), अज्ञान (**अज्ञानम्**), भी (ये सब)(**एव**), आसुरी (**आसुरीम्**), संपदा को (**सम्पदम्**), लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं (**अभिजातस्य**)।

अर्थात हे पार्थ! दंभ करना, दर्प करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोर होना, ये सभी आसुरी संपदा से युक्त मनुष्य के लक्षण हैं। दंभ का अर्थ है—जो हम नहीं हैं, वैसा स्वयं को दिखाने का प्रयत्न करना। जो हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है, उस चेहरे को प्रकट करने का प्रयास करना दंभ कहलाता है। नकली चेहरा दिखाने की कोशिश में व्यक्ति दंभ ही कर बैठता है।

चंगेज खाँ के जीवन का एक घटनाक्रम आता है। उसे दूसरों को आतंकित करने में, डराने-धमकाने में बहुत आनंद आता था। यदि दूसरे लोग दुःख से चीखते थे, चिल्लाते थे तो वह बहुत खुशी महसूस करता था।

एक बार किसी ने उससे कहा कि तुम सबको भयभीत कर सकते हो, परंतु किसी सहृदय व्यक्ति को, संत को भयभीत कर पाना तुम्हारे लिए संभव नहीं है। यह बात चंगेज खाँ को गहरी चुभ गई। उसे यह सहन नहीं हुआ कि इस विश्व में कोई ऐसा भी हो सकता है कि उसे चंगेज खाँ से डर न लगे। उसने एक संत को पकड़कर बुलाया और साथ ही कई निर्दोष व्यक्तियों को भी पकड़ करके बुला लिया। उसने संत को सामने खड़ा करके निर्दोष लोगों को एक-एक करके मौत के घाट उतारना आरंभ किया। ऐसा करते-करते वह संत को भी देखता जाता।

संत ने उसका हाथ पकड़कर उससे पूछा—"यह क्या कर रहा है?" चंगेज खाँ क्रोधित होते हुए बोला—"तेरी हिम्मत कैसे हुई मेरा हाथ पकड़ने की। क्या तू मुझसे डरता नहीं है, क्या तू यह नहीं जानता कि मैं कौन हूँ।" वो संत बोले—"मैं जानता हूँ कि तू कौन है।" चंगेज खाँ ने पलटकर पूछा—"क्या तू जानता है कि मेरी कीमत कितनी है?" उसके स्वरों में दंभ छलक रहा था। संत बोले—"हाँ! मुझे पता है कि तेरी कीमत कितनी है।" चंगेज खाँ बोला—"कितनी?" संत बोले—"पचास रुपये।" चंगेज खाँ के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह बोला—"पचास रुपये। बस, अरे! पचास रुपये तो मेरे कुरते की कीमत है।" संत बोले—"चंगेज खाँ! वो कीमत तेरे कुरते की ही बतायी है। तेरी अपनी कीमत तो कुछ नहीं है। दंभ के बोझ में तू इनसानियत की कीमत भूलकर बैठा है। इसलिए तेरे व्यक्तित्व का मूल्य तो शून्य ही रह गया है।"

दंभ को पहला आसुरी लक्षण बताने के बाद श्रीभगवान बोले कि दंभ के बाद दूसरा लक्षण घमंड है। दंभ व्यक्ति को उसका होने लगता है, जो उसके पास नहीं है; जबकि अभिमान या घमंड उसका होता है, जो उसके पास है। जैसे कोई पद के अभिमान में चूर हो जाता है तो कोई पैसे के घमंड से तना दिखता है। किसी को प्रतिष्ठा का अभिमान होता है तो कोई अपनी सुंदरता के घमंड में मदहोश हो जाता है। अंततः ये सारे ही घमंड एक-न-एक दिन, व्यक्ति को विनाश के कगार पर ला करके ही छोड़ते हैं।

पुराणों में आख्यान आता है कि भगवान शिव, नंदीश्वर के साथ बैठे हुए थे कि एक जोर की आवाज सुनाई पड़ी। नंदीश्वर ने भगवान शिव से पूछा—"भगवन्! यह भयंकर शब्द कैसा था?" भगवान शिव बोले—"रावण पैदा हुआ है।" भगवान का वाक्य भी समाप्त नहीं हुआ था कि एक और भयंकर आवाज हुई। नंदीश्वर ने पुनः प्रश्न भरी निगाहों से भगवान शिव को देखा तो वे बोले—"रावण मारा गया नंदीश्वर!" जब त्रिलोक को जीतने वाले रावण, नवग्रहों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने वाले दशानन का इस धरती पर आना व जाना क्षणभर की घटना बनकर रह जाता है तो अन्य किसी का अभिमान कहाँ टिक सकता है। इसीलिए भगवान दंभ को व अभिमान को आसुरी लक्षण बताते हैं।

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि क्रोधी और कठोर हृदय वाले लोग भी आसुरी स्वभाव के ही होते हैं। सच यही है कि ये दोनों एकदूसरे से अविच्छिन्न हैं। जिसके मन में क्रोध है, वाणी में क्रोध है, उसका हृदय निर्मल या करुण कहाँ होगा? उसका हृदय तो कठोर ही होगा। कहते हैं कि तैमूर लंग को जब नींद नहीं आती थी तो वो हाथियों को पहाड़ी से नीचे धक्का दिलवाकर गिरवा देता था और जब वे दरद से चिंघाड़ते थे तो उसे उनकी वो करुण पुकार सुनकर बहुत आनंद आता था। ऐसे क्रोधी, निर्मम व कठोर हृदयवालों को भी श्रीभगवान आसुरी स्वभाव से ही युक्त बताते हैं। इन सब लक्षणों के बाद श्रीभगवान कहते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति भी आसुरी लक्षणों से ही युक्त है। सही बात है। जो अज्ञानी है वही दंभ, पाखंड, घमंड, क्रोध, कठोरता इत्यादि लक्षणों से युक्त रह सकता है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति में ऐसे अवगुणों के होने की तनिक भी संभावना नहीं होती। ये सारे लक्षण एक आसुरी व्यक्ति के लक्षण हैं। (क्रमशः)

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥

—अथर्ववेद 8/1/6

अर्थात—हे पुरुष! तुम्हारी ऊर्ध्वगति हो, अधोगति न हो। मैं तुम्हें जीवनीशक्ति और बलवर्द्धक औषधियाँ देता हूँ। इससे तुम इस रथ रूप शरीर पर आरूढ़ होकर जरारहित रहते हुए इस जीवन-विद्या को बतलाना।

वृक्ष—ध्यान-साधना के मूक प्रेरक

वृक्ष हमारे चारों ओर प्रकृति का एक विशिष्ट घटक हैं, जिनकी सुंदरता, शीतलता, हरियाली हर व्यक्ति को सुकून देती है। एक वृक्ष के फल-फूल, घास-पत्तियाँ, लकड़ी, छाया, प्राणवायु जैसे अनगिनत अनुदान समस्त प्राणिमात्र को नित्यप्रति कृतकृत्य करते रहते हैं। वृक्षों के बिना हम जीवन के सौंदर्य, समृद्धि, संभावना एवं भव्यता की कल्पना भी नहीं कर सकते।

वृक्षों के इन अजस्र अनुदानों के साथ इनसे जुड़ा एक सूक्ष्मतत्त्व भी है, जो इन्हें एक आध्यात्मिक विशिष्टता प्रदान करता है; जिसका हम प्राय: हलका-सा एहसास तो कर रहे होते हैं, लेकिन उसकी गहराई में नहीं उतर पाते। थोड़ी-सी गहराई में विचार करने पर समझ आता है कि एक वृक्ष में एक पूरा जीवनदर्शन समाया हुआ है। विशेष रूप में जीवन को समग्र रूप में समझने, साधने के लिए तत्पर एक ध्यानसाधक के लिए वृक्ष एक जीवंत विग्रह है, जिसके सान्निध्य में वह अपनी ध्यान-धारणा को साध सकता है।

एक वृक्ष अकेला ही पनपता है और आगे बढ़ता है। उसे किसी से कोई आशा-अपेक्षा नहीं रहती। वह एक निरपेक्ष जीवन जीता है। कुछ ऐसे ही जैसे एक ध्यानी, सिर्फ और सिर्फ प्रकृति एवं परमेश्वर के संसर्ग की चाह रखता है, उन पर निर्भर रहता है और उनसे सतत पोषण पाता है। जीवन के हर विषम प्रवाह को भी वह उनके वरदान के रूप में स्वीकार करता है तथा अपने स्वधर्म पर अडिग रहता है और अपनी मूल प्रकृति के अनुरूप विकसित होता है। ऐसे ही एक वृक्ष भी सिर्फ बढ़ना जानता है। जमीन से उसे जो खाद-पानी मिलता है, सूर्य से जो गरमी प्राप्त होती है, हवा से जो प्राणतत्त्व मिलता है, आकाश से जो सूक्ष्म पोषण प्राप्त होता है—उन सबको ग्रहण कर, धारण कर, स्वयं में समाहित कर वह विकसित होता है, फलता-फूलता है तथा अपने अस्तित्व मात्र से जग को कृतार्थ करता रहता है।

वृक्ष का कुछ भी अपने लिए नहीं होता। वह सिर्फ और सिर्फ दूसरों के लिए जीता है। उसके फूल, पत्ते, टहनियाँ, फल, बीज, तने, जड़, छाया, शीतलता, हरियाली और सुंदरता सब दूसरों के काम आते हैं। ऐसे ही एक ध्यानी भी शाश्वत की ओर उन्मुख, राग-द्वेष से निरपेक्ष, अस्तित्व के परम सत्य की ओर बढ़ते हुए अपनी मूल प्रकृति में विकसित होता है। वृक्ष की भाँति एक वरदान बनकर जीता है। पूर्ण विकसित होने पर उसका अंत:करण दया, करुणा, संवेदना से ओत-प्रोत रहता है, जो प्राणिमात्र के कल्याण की चाह से आप्लावित रहता है। आश्चर्य नहीं कि जीवन में परम तत्त्व के अभीप्सु महासाधकों ने वृक्ष के सान्निध्य में मानवीय अस्तित्व की चरम अवस्था को प्राप्त किया।

भगवान बुद्ध बोधिवृक्ष की छाया तले बुद्धत्व को प्राप्त हुए और उस वृक्ष की भाँति करुणा के अवतार के रूप में अपने युग को ही नहीं, वरन आज भी असंख्य लोगों को कृतार्थ कर रहे हैं। रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में पीपल एवं वटवृक्षों की छाया तले ध्यान-समाधि में मग्न होकर जीवन का परम तत्त्व अपने ईश्वरकोटि शिष्यों एवं गृहस्थ साधकों के बीच वितरित करते रहे। उनके योग्यतम शिष्य स्वामी विवेकानंद स्वयं कुमाऊँ हिमालय के काकड़ी घाटस्थल पर एक पीपल पेड़ की छाया तले इस पिंड में ब्रह्मांड की अनुभूति को प्राप्त हुए और फिर उन्होंने अनुभूत व्यावहारिक वेदांत के साथ विश्व को प्रकाशित किया।

जैन धर्म के प्रवर्तकों की अलौकिक चरम अवस्था को अशोक वृक्ष के साथ जोड़कर देखा जाता है। गुरु नानकदेव को प्राप्त परम तत्त्व का ज्ञान बेर के वृक्ष के साथ जुड़ा हुआ है, जहाँ उन्होंने लगभग 15 वर्ष नित्य बेंई नदी में स्नान के बाद ध्यान किया था। खोजने पर हर देश एवं आध्यात्मिक परंपरा में ऐसे अनगिनत उदाहरण मिलेंगे, जहाँ वृक्षों की छाया तले वे पूर्णता को प्राप्त हुए। आश्चर्य नहीं कि भारतीय परंपरा में पीपल, वट, बेर, आँवला, तुलसी जैसे वृक्षों को देवतुल्य माना जाता है; इनका पूजन किया जाता है और ईश्वर के विशेष अंश के रूप में इनसे व्यवहार किया जाता है।

यहाँ पर यूरोप के पुरातन सेल्टिक संप्रदाय की चर्चा प्रासंगिक होगी, जिन्होंने वृक्ष के इर्द-गिर्द ध्यान पद्धतियों

को विकसित किया। वृक्ष इनकी संस्कृति का केंद्रीय तत्त्व रहा। ये वृक्ष को प्रकृति का सार अंश मानते थे और जनसमूहों से दूर इसी के सान्निध्य में ध्यान-साधना किया करते थे। ये पेड़ के तीन हिस्सों को जीवन के तीन आयामों से जोड़कर ध्यान में इनका उपयोग करते थे। इनके लिए वृक्ष के तने, जड़ें व बाह्य आच्छादन विशेष संदेश लिए रहते थे। तनों को ये जीवन का प्रत्यक्ष स्थूलस्वरूप मानते थे, जिनसे भौतिक जीवन के निर्वाह के लिए उपयुक्त भोजन एवं लकड़ी आदि मिलते हैं।

वृक्ष की जड़ों को वे उस अदृश्य, रहस्यमयी अवचेतन अस्तित्व के रूप में देखते थे, जो स्वप्न से लेकर जीवन के सूक्ष्म रहस्यमयी अस्तित्व के लिए जिम्मेदार रहता है और पत्तियों के बाह्य आच्छादन एवं आकाश की ओर उन्मुख टहनियों को जीवन का ईश्वरोन्मुख रूप मानते थे। इस रूप में वे वृक्ष के दिव्य सान्निध्य को ध्यान का माध्यम बनाकर इसकी शीतल छाया के तले जीवन के परम सत्य का चिंतन-मनन एवं ध्यान करते थे।

इस तरह वृक्षों को हम मात्र इनके स्थूलरूप तक सीमित न मानकर उनको समग्र रूप में समझने का प्रयास करते हुए इन्हें ध्यान का माध्यम बना सकते हैं। इनके मौन शिक्षण के प्रति ग्रहणशील बनते हुए अपने जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को भी विकसित कर सकते हैं। ❑

सौराष्ट्र के विद्वान और संत हृदय रामचंद्र भाई ने जो मुंबई में जवाहरात का धंधा करते थे, एक व्यापारी से सौदा किया कि एक महीने बाद वह इतने जवाहरात उनके हाथ इस भाव पर बेचेगा।

संयोगवश जवाहरात का दाम चढ़ने लगा और एक महीने में इतना अधिक हो गया कि यदि वह व्यापारी उस सौदे के अनुसार जवाहरात देता तो उसका दिवाला निकल जाता, मकान भी बिक जाता। तब रामचंद्र भाई उसकी दुकान पर गए। इनको देखकर उसने चिंतित होकर कहा—"आपके सौदे के विषय में मुझे स्वयं चिंता है। कुछ भी हो दो-तीन दिनों में रुपये की व्यवस्था करके आपकी देनदारी चुका दूँगा।"

रामचंद्र भाई बोले—"तुम्हारी चिंता का कारण यह लिखा-पढ़ी है।" ऐसा कहते हुए सौदे के कागज को फाड़कर फेंक दिया और कहा—"मैं जानता हूँ कि इस समय जवाहरात के दाम बढ़ जाने से तुम पर मेरा चालीस-पचास हजार रुपये का लेना हो गया है, पर मैं यह भी जानता हूँ कि इतना रुपया देने से तुम्हारी हालत क्या हो जाएगी। रामचंद्र दूध पी सकता है, खून नहीं पी सकता।" रामचंद्र भाई की अयाचित उदारता को देखकर उस व्यापारी ने उनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञता व्यक्त की।

मूल्यों और मुद्दों पर आधारित विकास

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए दूरदर्शी नीति, मूल्यों और मुद्दों की जरूरत होती है। केवल बयानबाजी और प्रदर्शन करने से विकास संभव नहीं है। हर तरह के छोटे-बड़े प्रलोभन से बच पाने की सामर्थ्य का होना भी तो जीवन में एक शाश्वत सत्य रहा है और सच में सच के साथ अडिग खड़े रहना भी बड़े साहस का काम है। चुनाव की तिथि तय होते ही धुआँधार प्रचार के साथ आरोप-प्रत्यारोपों की जो हलकी बूँदाबाँदी आरंभ होती है, वह प्रचार के अंतिम दिन तक मूसलाधार बारिश में बदल जाती है और अपने पीछे छोड़ जाती है—कीचड़, गंदगी और बदबू जिसे हम आम जन आसानी से यों भुला देते हैं, जैसे कुछ भी न हुआ हो। भुला देते हैं कि अपने इलाके के नेताओं का सभ्य भाषा का नित्यप्रति उल्लंघन, हर दिन जाति व धर्म की आड़ में नए-नए शिगूफे छोड़ना और आम जनमानस की भावनाओं को आहत करना। लोकतंत्र की आजादी में सब चलता है और फिर एक नियत दिन वोट डाल के गर्वित मुस्कान के साथ अपनी उँगली दिखाते हुए फेसबुक या ट्विटर पर सेल्फी पोस्ट कर देना भर ही मानो हमारा राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यवहन रह गया है।

प्राचीनकाल से राज्याभिषेक एक वैदिक संस्कार है, जो राजा बनने की विधिवत् घोषणा हुआ करती थी व इसी समय राज्य के अन्य अधिकारियों की भी घोषणा होती थी। आज लोकतंत्र में उसी राज्याभिषेक का बदला हुआ स्वरूप है—पंचवर्षीय चुनाव-प्रक्रिया और आज के इस तकनीकी के समय में सोशल मीडिया, इंटरनेट, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, टीवी, ह्वाटसएप इन सबने मिलकर ऐसा षड्यंत्र रचा है कि अभिमन्यु की भाँति हम सबके लिए इस चुनावी आरोप-प्रत्यारोप की निरर्थक बहस के टेक्नालॉजी के चक्रव्यूह में घुसना तो बहुत आसान है, पर निकल पाना असंभव है। सत्य की एक विशेषता है कि सत्य एकनिष्ठ रहता है, दृढ़ रहता है और उसे कितना ही घुमा-फिरा के कहा जाए फिर भी उसका मूल स्वरूप नहीं बदलता।

सन् 1947 में जब देश को आजादी मिली तो राष्ट्र विभाजन के दंश से आहत था। सरकारी खजाना खाली था और जगह-जगह सांप्रदायिक दंगे हो रहे थे। भुखमरी, अशिक्षा, गरीबी, बीमारी से जूझता देश लगभग कंगाल था और राष्ट्र की बागडोर सँभालने वाले नौसिखिए व अनुभवहीन थे। आज आजादी के सत्तर वर्ष बाद भी स्थिति कमोबेश वैसी ही है, आजादी के इतने वर्ष बीतने के बाद भी आज लोग विविध और विकट समस्याओं से जूझ रहे हैं।

गरीबी, बेरोजगारी, हिंसा, असुरक्षा, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बीमारी, बढ़ती महँगाई, बढ़ती विषमता, प्रकृति और दुर्बलों का शोषण, अपराधीकरण, प्रदूषण, भुखमरी, शिक्षा, जाति व धर्म के नाम पर टुकड़ों में बँटा समाज—ये समस्याएँ आज भी वैसी ही हैं, जैसी आधी सदी पूर्व थीं। फिर भी कुछ चीजें कुछ बदली हैं और बदलती हुई प्रतीत हो रही हैं। इसका सार्थक परिणाम निकल सकता है, यदि महिलाओं के प्रति सम्मानजनक सोच के काम को आगे बढ़ाकर एवं बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना पर कार्य किया जाए। ऐसा करने से पीढ़ी-दर-पीढ़ी बेटी के गर्भ में या जन्मते ही मार देने की कुत्सित प्रथा से निजात मिल सकती है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि शासक की भूमिका जनता के पिता जैसी होती है, अभिभावक जैसी होती है। प्रजा सुखी होगी तभी राजा का सुख है, प्रजा का हित ही राजा का हित है।

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

किंतु यथार्थ में स्वतंत्रता मिलने के बाद ऐसा कब-कब हुआ। हमारे शास्त्र यह भी कहते हैं कि राजा द्वारा शासित जनसमूह को प्रजा यानी संतान कहा जाता है। राजा प्रजा का मानस पिता होता है; पालनकर्त्ता होता है। पोषण और रक्षण का जिम्मेदार होता है। प्रजा के दुःखी होने पर राजा को सुख की नींद सोने का कोई अधिकार नहीं है, ऐसा माना जाता है।

हम छोटी-छोटी व्यर्थ की दलीलों में फँस जाते हैं और मुख्य मुद्दा कहीं पीछे छूट जाता है। दरअसल सत्य हमेशा जानना चाहता है कि उसके पीछे हम कितनी दूर तक जा सकते हैं और झूठ हमेशा ऊँचा बोलता है; क्योंकि झूठ भीतर से डरा रहता है। टी.वी. की डिबेट से किसी का भला नहीं हो सकता है। इसके लिए शासक को जनता के लिए जीना पड़ता है। असत्य को सत्य का और सत्य को असत्य का आवरण ज्यादा समय तक नहीं चढ़ाया जा सकता है, इसलिए ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने अयोध्याकांड में इसी संदर्भ में आगे यही चौपाई लिखी कि—

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए।
बेद पुरान बिदित मनु गाए॥

अर्थात—असत्य के समान पापों का समूह नहीं है। सत्य ही समस्त उत्तम सुकृत पुण्यों का मूल है, वेद, पुराण और स्मृति भी ये ही कहते हैं, किंतु कुछ लोग अपनी ही संस्कृति पर कुठाराघात करते हैं। उनके गले से कैसे उतरेगा सत्य का कड़ुआ घूँट? वे इस सत्य को कैसे स्वीकारेंगे कि संस्कृति ही किसी राष्ट्र का परिचायक है।

राष्ट्रीय विकास के लिए मुख्य मुद्दों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है और ऐसा होने की संभावनाएँ धीरे-धीरे जाग रही हैं। यह निश्चय ही भारतवर्ष के नए युग का शुभारंभ है; क्योंकि आज बड़े पुण्यों के प्रताप से, बड़े भाग्य से एक बार फिर से राष्ट्रीय विकास की संभावना जागी है। शाश्वत सत्य यही है और आज—'सत्यमूल सब सुकृत सुहाए' पर चिंतन करने की आवश्यकता है।

हम राष्ट्रीय मूल्यों को दाँव पर लगाकर और मुख्य मुद्दों से भटककर विकास के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते हैं। इसके लिए शासन, सत्ता और जन-जन की भागीदारी जरूरी है। इसी के आधार पर हमारा राष्ट्र विकसित एवं पल्लवित हो सकता है। ❑

एक बार बर्नार्ड शॉ को एक महिला ने रात्रिभोज पर निमंत्रित किया। अत्यधिक व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। व्यस्तता के कारण वे बिना कपड़े बदले ही महिला के घर पहुँच गए। महिला को उन्हें देखकर खुशी हुई, परंतु वह उनके वस्त्र देखकर निराश हो गई और बोली—"आप मोटरगाड़ी में बैठकर जाइए और अच्छे वस्त्र पहनकर आइए।"

बर्नार्ड शॉ तुरंत चले गए और थोड़ी देर बाद कीमती वस्त्र पहनकर लौटे। सब खाना खाने लगे तो सबने देखा कि बर्नार्ड शॉ सभी खाने की चीजों को कपड़ों पर पोत रहे हैं और कह रहे हैं—"खाओ, मेरे कपड़ों खाओ, निमंत्रण तुम्हीं को मिला है। तुम ही खाओ।" सब बोल पड़े—"यह आप क्या कर रहे हैं?"

बर्नार्ड शॉ ने कहा—"मैं वही कर रहा हूँ, जो मुझे करना चाहिए। यह निमंत्रण मुझे नहीं, मेरे कपड़ों को मिला है, इसलिए आज का खाना मेरे कपड़े ही खाएँगे।" उनके यह कहते ही पार्टी में सन्नाटा छा गया। निमंत्रण देने वाली महिला की शर्मिंदगी की सीमा न रही। वह समझ चुकी थी कि व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी प्रतिभा से होता है, कपड़ों से नहीं।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2

गायत्री की पंचकोशी साधना

(गतांक से आगे)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव साधना पथ के सभी समर्पित पथिकों को संबोधित करते हुए उनको गायत्री की पंचकोशी साधना के मर्म से परिचित कराते हैं। साधना के गुह्यतम सोपानों पर चढ़ने से पूर्व वे सभी श्रोताओं को बताते हैं कि अध्यात्म का सच्चा अर्थ, मान्यताओं से नहीं, बल्कि उसमें समाहित सिद्धांतों से तय होता है। वे कहते हैं कि अध्यात्म का मूल अर्थ जीवन के समग्र परिवर्तन और समुचित रूपांतरण से है। गायत्री की पंचकोशी साधना को वे पाँच देवताओं की साधना के रूप में बताते हैं, जिसमें से प्रत्येक कोश के जागरण का उद्देश्य वे एक-एक देवता की आराधना से बताते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

संयम—अन्नमय कोश की साधना

मित्रो! आपको जो यह शरीर मिला हुआ था, आपको यह समझ में नहीं आया कि इस देवता का कैसे सम्मान करना चाहिए? यह भगवान की दी हुई धरोहर है बेटे! यह हमारी पूँजी है, भगवान की दी हुई यह एक संपत्ति है। इसको आपने सँभालकर रखा होता, तो इसने आपकी इतनी सहायता की होती, जिसका कोई मूल्य ही नहीं है।

विक्रमादित्य के पास पाँच वीर रहते थे। वे उन्हें जो हुक्म देते थे, वे वही काम करके ले आते थे। वे विक्रमादित्य के शरीररूपी पाँच वीर थे। आपने भी अगर शरीररूपी इन पाँचों वीरों को जाग्रत कर लिया होता, तो मजा आ जाता।

विक्रमादित्य के पाँच वीरों को मैं अपने ढंग से देवता कहता हूँ। संयम के माध्यम से, ईमानदारी के माध्यम से, मनोयोग के माध्यम से इन देवताओं की पूजा करना अगर आप सीख जाते, तो वे सिद्ध होते और इनके प्रत्यक्ष प्रमाण आपको मिलते। मैं परोक्ष की बात नहीं करता। मैं तो यह कहता हूँ कि सिद्धियाँ अगर हैं, तो प्रत्यक्ष होनी चाहिए। उनकी कीमत होनी चाहिए। नहीं साहब! अगले जन्म में होंगी।

अगले जन्म में क्या होगा बेटे? मैं नहीं जानता और इस बाबत मैं कुछ भी नहीं कह सकता। मैं तो इसी जन्म की बात कहता हूँ। मैंने अध्यात्म को जिस तरह से काम में लिया, उसका परिणाम मैंने इसी जीवन में पाया। जो कुछ भी मैं करता हूँ, हिसाब से करता हूँ और हिसाब से फल मिल जाता है। अगर आपका अध्यात्म ऐसा नहीं है कि इस हाथ करने से उस हाथ फल देता हो, तो मैं कहता हूँ कि आपके अध्यात्म की विधि गलत है या आपको बताया गया तरीका गलत है। इन दो में से एक बात गलत है।

मित्रो! अन्नमय कोश की साधना कैसे की जा सकती है? संयम से। संयम की बाबत मैं कई दिन से आपको बता रहा हूँ। मेहनत की बात बता रहा हूँ। संयम की बात बता रहा हूँ। मनोयोग की बात बता रहा हूँ। इन सब चीजों को अगर आप ध्यानपूर्वक और ईमानदारी से करें और कानून में रखें और नियम से रहें और ठीक तरीके से इस्तेमाल करते रहें, तो आपकी प्रगति का द्वार खुला हुआ है।

शारीरिक श्रम करने वाले लोगों ने लोक और परलोक दोनों सँवारे हैं, सुधारे हैं। अक्ल नहीं है? जाने दे अक्ल को। भावना नहीं है? मरने दे भावना को। भजन नहीं है? रहने दे भजन को। केवल शरीर को लेकर खड़ा हो जा, फिर मैं बता दूँगा कि शरीर के माध्यम से लौकिक शक्तियाँ ही नहीं, पारलौकिक शक्तियाँ भी मिल सकती हैं। कैसे मिल सकती हैं।

प्राय: मैं हजारी किसान का नाम सुनाया करता हूँ, जो एक छोटे से देहात में पैदा हुआ था। जिसके पास न अक्ल थी, न समझ थी, न गीता पढ़ा था, न रामायण-भागवत पढ़ा था। उसने केवल शरीर की मेहनत-मशक्कत के द्वारा घूम-घूम करके आम के बगीचे लगाए। एक हजार आम के पेड़ एक-एक गाँव में लगाए। उसके मरने के बाद उस इलाके का नाम हजारी बाग रखा गया। हजारी किसान ने हजार बाग लगाए थे, इसलिए हजारी बाग जिला बना।

शरीर के देवता का चमत्कार

मित्रो! ताजमहल, शाहजहाँ ने मुमताज की स्मृति में एक स्मारक बनवाया था। ताजमहल एक ओर और हजारी प्रसाद का स्मारक एक ओर। लंबे समय से हजारी जिला चला आ रहा है और अभी हजारों वर्षों तक चलेगा। बच्चे-बच्चे की जबान पर हजारी बाग का नाम है। वह अपने नाम के साथ हजारी बाग जरूर लिखता है। हर व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में अपने जिले का नाम जरूर लेता है। भले ही वह उस किसान की तारीफ नहीं करता, पर प्रकारांतर से उसकी ईमानदारी और श्रेष्ठ कामों के लिए की गई मेहनत को अवश्य याद करता है।

बेटे, मैं शरीर के देवता की करामात कहता हूँ, जिसका मूल्य आप समझते नहीं हैं और मारे-मारे फिरते हैं। कोई चामुंडा पर मारा-मारा फिरता है, कोई संतोषी माता के पास जाता है। कोई भवानी के पास, तो कोई चंडी देवी के पास मारा-मारा फिरता है और जो देवी अपनी धुन में बैठी हुई है और दोनों हाथों में वरदान लिए बैठी है, उस देवी के पास भी नहीं जाता। इस देवता के पास भी नहीं झगड़ा जाता, पर भैरों जी के पास और फलाने के पास न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा डोलता है ? और जो देवता वरदान उठाए बैठा है, उसके पास भी नहीं फटकता।

मित्रो! पिसनहारी का नाम तो मुझे नहीं मालूम, पर वह हमारे मथुरा क्षेत्र की रहने वाली थी। चौदह वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी। माँ-बाप ने कहा कि दोबारा ब्याह कर लो, हम मरने वाले हैं। उसने कहा कि हम ब्याह क्यों करेंगे ? हमारा एक देवर है और एक है जेठ, दोनों हमारी सहायता करेंगे। बाप ने पूछा—कौन है तेरा देवर और जेठ ? उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और कहा कि ये हैं हमारे देवर और जेठ। इनमें से एक हमारा देवर है और एक हमारा जेठ है। हमारे दोनों हाथ काम करेंगे। हमें ब्याह करने की क्या जरूरत है ? हमारे पास किसी बात की क्या कमी है ? उसने चक्की से अनाज पीसना शुरू किया।

उस जमाने में मंदी थी। दो आने, तीन आने की मजदूरी कर लेती थी। सात पैसे में गुजारा कर लेती थी और एक-दो पैसे रोज के हिसाब से बचा लेती थी। जब बुड्ढी हुई, तो उसने गाँववालों को बुलाया और कहा—मैंने एक-दो पैसा बचाकर, ढेरों पैसा जमा कर लिया है। इसे अच्छे काम में लगा दीजिए। लोगों ने एक कुआँ बनवा दिया।

एक बार ज्येष्ठ महीने की तपती दुपहरी में ईश्वरचंद्र विद्यासागर को बंगाल के कालना गाँव में किसी आवश्यक कार्य में जाना पड़ा। अभी कुछ ही दूर चले थे कि एक गरीब आदमी रास्ते में हाँफता-कराहता पड़ा दिखाई दिया। सभी लोग उसे देखकर निकल जा रहे थे, कोई उसकी सहायता नहीं कर रहा था।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर को यद्यपि आवश्यक कार्य से जाना था तथापि उस व्यक्ति को देखकर उनकी करुणा उमड़ पड़ी। उन्होंने उसे पानी पिलाया, सांत्वना दी और कंधे पर लादकर अस्पताल ले जाकर भरती करवाया। वहाँ ले जाकर उसकी सेवा-शुश्रूषा में हाथ बँटाया। जब वह थोड़ा अच्छा हो गया, तब उसे रुपये देकर अपने कार्य हेतु रवाना हुए। महापुरुषों का जीवन ही सत्कार्य हेतु समर्पित होता है और उसकी पूर्ति किए बिना वे अन्य कोई कार्य नहीं किया करते।

मित्रो! हमारे सारे इलाके में सभी कुओं का पानी खारा है। हमारे गायत्री तपोभूमि का भी पानी खारा है। बहुत मेहनत के बाद 80 फीट गहरा खोदने के बाद एक हैंडपंप लगाया। उसका पानी मीठा है। मथुरा के सारे क्षेत्र में पानी खारा है। वह एक कुआँ, जो पिसनहारी के पैसे से बना, जो दिल्ली जाने वाले मार्ग में बना हुआ है, उसका पानी मीठा

है। सारे इलाके के कुएँ देखने के बाद आपको उसी एक कुएँ में मीठा पानी मिलेगा।

लोगों का ख्याल है कि उस कुएँ के पानी को पीने से तपेदिक ठीक हो जाती है। तरह-तरह की बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं। दूर-दूर से लोग आते हैं और पानी भरकर ले जाते हैं और मरीजों को पिलाते हैं। आने-जाने वाली बरातें, वहीं पिसनहारी के कुएँ के पास ठहरती हैं। इतना शानदार कुआँ, इतनी बड़ी धर्मशाला है। ईमानदारी के साथ मशक्कत और उसमें भावना मिली हुई थी। अगर आदमी ऐसी मेहनत करना भी सीख जाए, तो कमाल हो जाए। पर हम क्या कर सकते हैं? चिराग तले अँधेरा दिखाई पड़ता है। हमारे भीतर, हमारा देवता प्यासा बैठा हुआ है। हमारा देवता हाथ जोड़े बैठा हुआ है। इस देवता से वरदान लेने के बजाय हम न जाने कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते हैं? यह जिंदगी बेहतरीन कस्तूरी के हिरण से भी गई-बीती है। अगर हमने कस्तूरी को अपनी नाभि में देखा होता, तो हम निहाल हो गए होते।

जो भी करें, ईमानदारी से करें

मित्रो! मैं एक और भी किस्सा आपको बता सकता हूँ? आपको कोई और विधि-विधान न आते हों, तो कोई बात नहीं। आप केवल अन्नमय कोश की उपासना कर लें, तो आप देवता बन सकते हैं। ऋषि बन सकते हैं, ख्यातिवान बन सकते हैं। चलिए मैं और बात कहता हूँ कि आप भगवान बन सकते हैं। केवल शरीर की बात कीजिए, मन को आप मरने दीजिए। बुद्धि, चित्त, अहंकार सबको मरने दीजिए। मैं केवल शरीर की बात कहता हूँ आपसे। शरीर का संयम इस तरीके से काम दे जाता है।

संयम में केवल यह नहीं है कि खाएँगे नहीं। गलत चीजों का इस्तेमाल नहीं करेंगे। आहार-विहार के संबंध में गलतियाँ नहीं करेंगे—बेटे, यह तो एक शर्त है। इससे अन्नमय कोश का उद्धार नहीं होता। हम जो भी काम करेंगे, ईमानदारी के साथ करेंगे। बेईमानी का काम उसमें शामिल नहीं होगा। आपने मशक्कत तो की, लेकिन गंदे कामों के लिए की, तो बेटे, फल नहीं मिलेगा। ईमानदारी से काम होना चाहिए—एक। और काम केवल ईमानदारी से ही नहीं, मन लगाकर होना चाहिए, तन्मयता से होना चाहिए।

मित्रो! चलिए अन्नमय कोश की साधना के संबंध में मैं एक नाम बताना चाहता हूँ। एक कहार सत्तर वर्ष की उम्र का था। अनेक देशों से आए फिलॉसफरों की एक सभा थी। बातें होती रहीं। वह कहार खाना पकाता था और बरतन साफ करता था। और जब सभा का समय होता तो उस स्थान पर जाकर एक कोने में बैठ जाता था और सबकी बातें सुनता रहता था।

जब सभा समाप्त हो गई, तो उसने बड़े साहब से हाथ जोड़कर कहा—"साहब! कोई ऐसी भी विधि है कि ये जो इतने विद्वान हैं, इनकी तरह हमें भी ज्ञान हो जाए और हम भी समझदार हो जाएँ।" तब फिलॉसफर ने उससे पूछा—"कितनी उम्र है तेरी?" उसने कहा—"सत्तर साल।" बस, सत्तर साल का ही है तू? हाँ साहब! फिलॉसफर ने कहा—"अरे अभी क्या है? भगवान ने मनुष्य की उम्र सौ वर्ष बनाई है। तीस साल अभी तेरे पास हैं। तू मशक्कत से काम कर और पढ़ना शुरू कर दे। विद्या तेरे पास आ जाएगी और जैसे हम सब फिलॉसफर हैं, उसी श्रेणी में तू आ जाएगा। मेरी बात मान और पढ़ना-लिखना शुरू कर दे।"

मित्रो! 70 साल की उम्र में उसने कहारी करते-करते पढ़ना-लिखना शुरू किया। उसने कलम मँगाई, पट्टी मँगाई और पढ़ना शुरू कर दिया। जिंदगी के अंतिम समय तक संसार के इतिहास में उस जैसा फिलॉसफर कोई नहीं हुआ। उसने फिलॉसफी पर अनेक ग्रंथ लिखे। वह न केवल अपने देश का, अपितु सारी दुनिया का सबसे बड़ा फिलॉसफर माना जाता है।

यह मैं क्या कह रहा हूँ? बेटे, यह मैं शरीर के अन्नमय कोश के देवता के अनुग्रह की बात कह रहा हूँ। अन्नमय कोश को आप समझते नहीं हैं। आपके पास कितना मूल्यवान यंत्र है, कितना मूल्यवान देवता हमारे साथ-साथ खड़ा हुआ है और भगवान के साथ बैठा हुआ है। हमेशा उसकी अवज्ञा, उपेक्षा कर मारा-मारा फिरता है और कहता है कि मैं तो दरिद्र हूँ। मैं तो बीमार हूँ, मैं तो कंगाल हूँ और मैं तो गिरा पड़ा हूँ। देवता की अवज्ञा करने वाले की जो मिट्टी पलीद होनी चाहिए थी, वही हो रही है।

मित्रो! मैं हिंदुस्तान के एक ऐसे व्यक्ति का नाम बता सकता हूँ, जिनका नाम सातवलेकर है। 55 साल की उम्र में ड्राइंग मास्टर की नौकरी से रिटायर हो गए और यह विचार करने लगे कि अब मैं 55 साल का हो गया। अब क्या करूँ? उस जमाने में पेंशन भी थोड़ी-सी मिलती थी। 15-20 रुपये पेंशन मिलती थी। अब क्या करना चाहिए? उनके

विद्यार्थी मन में एक बात आई कि अब मुझे संस्कृत पढ़नी चाहिए। 55 साल के बच्चे ने यह निश्चय किया।

55 साल की उम्र हुई तो क्या? कोई फरक नहीं पड़ता। छापेखाने वाले कई बार गलती कर जाते हैं। एक अक्षर की जगह दो अक्षर लगा देते हैं। 5 की जगह पर 55 लगा देते हैं। सातवलेकर ने सोचा कि नौकरी से तो मैं अलग हो गया। मेरी उम्र भी हो गई। पेंशन भी हो गई। अब उम्र की दृष्टि से, विचारों की दृष्टि से कुछ करना है। उन्होंने पढ़ना शुरू किया। मित्रो! पं० सातवलेकर उस आदमी का नाम है, जिसने वेदों के भाष्य किए, जो माने हुए भाष्य हैं। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया। वे बहुत बड़े विद्वान माने जाते थे। उन्होंने ढेरों-की-ढेरों किताबें लिखीं। उनकी विद्वत्ता के बारे में सारा हिंदुस्तान जानता है।

स्वयं को सँभालने का नाम साधना

मित्रो! यह मैं शरीर की बात कहता हूँ। अगर आप अपने शरीर को क्रमबद्ध रूप से ईमानदारी के साथ में लगा सकते हों, फिर आप उसके चमत्कार देखिए, परिणाम देखिए। श्रम तो आप करते नहीं हैं, साधना तो आप करते नहीं हैं। साधना किसे कहते हैं? साधना बेटे, अपने को सँभालने का नाम है। साधना करने का मतलब है—अपने आप को सँभालना। साधना किसकी की जाती है?

साधना श्रेष्ठ की की जाती है। शरीर की हम साधना करते हैं, तो हम पहलवान हो जाते हैं। मन की साधना करते हैं, तो विद्वान हो जाते हैं। खेती-बारी की साधना करते हैं, तो धनवान हो जाते हैं, यह सत्य है। मुझे याद है कि आणंद के पास एक छोटा-सा गाँव है—गामड़ी। वहाँ के एक सज्जन अक्सर आया करते थे। उनसे किसी ने कह दिया था कि आचार्य जी के आशीर्वाद से न जाने क्या-से-क्या हो जाता है। उनका एक 14 साल का बच्चा था, जिसका देहांत हो गया था। सो वे बहुत दुःखी रहने लगे। किसी ने याद दिलाया कि आचार्य जी के पास चले जाओ। उनका आशीर्वाद फलीभूत हो जाता है। वे मेरे पास आए और कहने लगे कि महाराज जी! मेरा 14 साल का बच्चा नहीं रहा। कुछ ऐसा करिए कि हमारे घर में सब ठीक हो जाए।

मित्रो! मैंने कहा—बेटे, मैं क्या करूँ? अच्छा भगवान से प्रार्थना करूँगा। प्रार्थना का क्या असर हुआ, यह तो भगवान जाने, लेकिन सालभर बाद उनके घर बच्चा हो गया। उसके बाद से वे हर साल आया करते थे और जितने साल का बच्चा हुआ, उतने किलो घी अखंड दीपक के लिए लाते थे। कितना बड़ा बच्चा हुआ? नौ साल का हुआ। सो वे नौ किलो घी ले आए। 12 साल का हुआ, तो 12 किलो, 22 साल का हुआ, तो 22 किलो घी ले आए। वे कहते थे कि महाराज जी! यह आपके अखंड दीपक का परिणाम है।

एक बार जब मैं उधर गया, तो वे मुझे अपने घर ले जाने के लिए मोटर लेकर आ गए। मैंने कहा—अरे भाई! हम तो बैलगाड़ी में चले चलते। 6 मील के लिए आप गाड़ी क्यों लाए? नहीं साहब! नहीं गुरुजी! आपको हम इस तरह कैसे ले चलेंगे? आपको तो मोटर में ही चलना पड़ेगा। उसने बताया नहीं कि मोटर हमारी है। मोटरगाड़ी घर के बाहर खड़ी कर दी। मैंने कहा—भले आदमी! गाड़ी वापस भेज दे। शाम को मैं जाऊँगा, तो बैलगाड़ी से चला जाऊँगा।

उत देवा अवहितं
देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा
देवा जीवयथा पुनः॥

—ऋग्वेद 10/137/1

अर्थात—हे देवगण! हम पतितों को बार-बार ऊपर उठाएँ। हे देवो! हम अपराधियों के अपराधों का निवारण करें। हे देवो! हमारा संरक्षण करते हुए आप हमें दीर्घायु बनाएँ।

बाद में मैंने पूछा—क्या मामला है? मोटरगाड़ी में इतना पैसा क्यों खरच करते हो? गरीब आदमी हो। उन्होंने कहा कि हम गरीब थोड़े ही हैं। यह गाड़ी हमारी है। हमारी बच्चियाँ बी०ए०, एम०ए० में पढ़ती हैं और रोजाना मोटर उन्हें कॉलेज छोड़कर आती है और शाम को ले आती है। इसलिए हमारे बच्चे पढ़े-लिखे हैं और मोटर हमने इसीलिए रखी है। उन्होंने कहा कि ये लड़कियाँ पढ़ाई भी करती हैं और खेती में सहयोग भी करती हैं। हमारा पैसा मेहनत का, मशक्कत का पैसा है। हमारी लड़कियाँ भी काम करती हैं

और महिलाएँ भी काम करती हैं। खेत में से हम सोना पैदा करते हैं और चाँदी पैदा करते हैं। ये पसीने की बूँदें मोती बनकर टपकते हैं, हीरे बनकर टपकते हैं। हमको पसीना बहाना आता है और देखिए हम मालदार आदमी हैं और अमीर आदमी हैं।

आलस्य माने दरिद्रता

मित्रो! आपको पसीना बहाना आता है? पसीना बहाना अगर हमको आ गया होता, तो हमारी विद्या, पैसा चक्कर लगा रहे होते। बेटे, पैसा हमारा चला गया और दरिद्रता आ गई। आलस्य माने—दरिद्रता। हम आलसी हैं, तो दरिद्र रहेंगे ही। समझदारी के हिसाब से दरिद्र रहेंगे। उत्साह के हिसाब से दरिद्र रहेंगे और मनहूसों की तरह से हमेशा बैठे रहेंगे और कहते रहेंगे कि काम करने से क्या फायदा? भाग्य में हमारे काम करना लिखा है। बच्चियों को वहाँ ब्याहने का प्रयास करते हैं कि हमारी बेटी को काम न करना पड़े। गुरुजी! हमने तो अपनी लड़की का बहुत अच्छे घर में ब्याह किया, जहाँ खाना पकाने वाली खाना पकाती है। कपड़ा धोने वाली नौकरानी कपड़ा धोने आती है। चौका-बरतन, झाड़ू-पोंछा करने वाली अलग आती है। उसे कोई काम नहीं करना पड़ता।

तो बेटे, अब की बार जब तेरा जमाई आवे, तो दो बातें मेरी ओर से कहना कि हमारी बेटी को दो बातों से कष्ट है। उसे और दूर कर दे तो भाग्यवान हो जाए। क्या-क्या? खाना खाती है, तो रोटी चबानी पड़ती है। कुल्ला-मंजन करना पड़ता है, तो उसके बदले कोई और खाना खा लिया करे और बेटी चुपचाप बैठी रहा करे। दूसरा—उसे पेशाब-पाखाने जाना पड़ता है। फिर हाथ धोती है, कुल्ला करती है। एक नौकरानी रखे जो इसके बदले पेशाब-टट्टी से निपट लिया करे। बस, तेरी बेटी साक्षात् लक्ष्मी हो जाएगी; क्योंकि खाना बनाएगी नहीं और खाएगी भी नहीं। बस, पलंग पर बैठी-बैठी सोया करेगी। कामचोर और हरामखोर—यह दो गालियाँ जब सुनाई पड़ती हैं, तो मुझे बहुत बुरा लगता है। क्योंकि इन दो गालियों से और गंदी कोई गाली नहीं है।

क्या मतलब है आपका? बेटे, मेरा मतलब यह है कि शरीर के श्रम का, अन्नमय कोश का अपमान, अन्नमय कोश का उपहास जो भी आदमी करते होंगे, वे दरिद्र होंगे। अन्नमय कोश का उनके लिए शाप यह है कि तुम दरिद्र हो। दरिद्रता का मतलब पैसे की कमी नहीं है। बेटे, मैं आपको अन्नमय कोश की शिक्षा दे रहा था और कह रहा था कि जो व्यक्ति अन्नमय कोश का ठीक तरह से इस्तेमाल कर ले, तो वह पैगंबर हो सकता है, भगवान बन सकता है।

हजरत इब्राहिम मुसलमान धर्म के बड़े पैगंबर हुए हैं। जैसे हमारे यहाँ राम और कृष्ण हुए हैं, वही स्थान मुसलिम धर्म में हजरत इब्राहिम का है। वे एक दिन खुदाबंद करीम को याद करते-करते अपने घर से रवाना हुए। घूमते-घूमते एक किसान के यहाँ जा पहुँचे। दोपहर का वक्त था। खाना माँगा। किसान ने खाना तो खिला दिया, फिर यह पूछा कि आप कौन हैं? कैसे आए? उन्होंने कहा कि हम भजन करते हैं और खुदा की याद में चलते रहते हैं। भीख माँगते हैं। किसान ने कहा—बड़े शरम की बात है। आप खुदाबंद को याद करते हैं, तो भीख क्यों माँगते हैं? आप दो घंटे भजन कीजिए और छह घंटे श्रम कीजिए, मेहनत कीजिए और हाथ-पाँव से परिश्रम करके रोटी कमाइए। मेहनत की रोटी खाइए। पराया अन्न खाएँगे, तो जो भी कुछ पुण्य आप करते हैं, वह सब उसके खाते में जाएगा, जो रोटी खिलाता है।

मित्रो! कैसा अन्न है, कैसा नहीं, इससे क्या फायदा होगा? इब्राहिम की समझ में यह बात आ गई। उन्होंने कहा—भाई साहब! हमारा गाँव तो बहुत दूर रह गया। अब हम यहाँ आ गए हैं। आपने इतनी सलाह दी, तो एक और सलाह दें कि हमको आपके जैसे मित्र के यहाँ रहने के लिए जगह मिले। हमारे खाने, कपड़े का इंतजाम हो जाए, कहीं ऐसी जगह नौकरी लगवा दीजिए। हम मेहनत करेंगे, ताकि खाना-कपड़ा मिल सके। किसान ने कहा कि अगर आप इस बात पर तैयार हैं, तो हमारे यहाँ नौकरी कर लीजिए। क्या करना पड़ेगा? उसने कहा—आप बगीचे की रखवाली कर दिया करें। खाना-कपड़ा आपको मिल जाएगा।

हजरत इब्राहिम उस बगीचे में नौकरी करने लगे। बहुत दिन बाद जब फल आए, तो किसान ने कहा—हमें मीठे-मीठे फल लाकर दीजिए। आज हम आए हैं, तो बगीचे के मीठे फल खाएँगे। हजरत इब्राहिम ने आम के बड़े-बड़े, पीले-पीले फल लाकर दिए। किसान ने हरेक फल को चखा, सभी खट्टे निकले। उसने कहा—अरे भाई! आपको यह भी पता नहीं है कि कौन-सा फल मीठा है? इस बगीचे में ढेरों फल मीठे हैं और ढेरों फल खट्टे हैं। आपको यह ज्ञान नहीं है कि कौन से फल मीठे हैं। उन्हें

देखकर लाना चाहिए था। हजरत इब्राहिम ने कहा—हमें क्या पता कि कौन से फल मीठे हैं और कौन से खट्टे हैं? जमीन पर जो फल गिर जाते हैं, वे मीठे होते हैं।

मित्रो! हजरत इब्राहिम ने कहा—जो हमारा हक है, उसके अलावा हम क्यों खाएँगे? बेईमानी का पैसा क्यों खाएँगे? चोरी का पैसा क्यों खाएँगे? छिपा हुआ क्यों खाएँगे? आज तक हमने ऐसी कोई चीज नहीं खाई। हमने आपका एक फल भी नहीं चखा है। कौन-सा खट्टा है और कौन-सा मीठा है, हमें क्या पता? हम तो अपनी मेहनत की कमाई ही खाते हैं।

किसान ने समझा कि यह कैसा शानदार आदमी है। कैसा ईमानदार आदमी है। उसने ईमानदारी का इस तरह संकल्प किया। उसने कहा—आप संत हैं। हमारे बगीचे में भजन किया कीजिए, रोटी आपको मिलती रहेगी। काम करने की जरूरत नहीं है। तीन-चार दिन बाद हजरत इब्राहिम ने किसान को चिट्ठी लिखी कि आप वह आदमी नहीं हैं, जिनने हमको नसीहत दी थी कि मेहनत करके रोटी खानी चाहिए और ईमानदारी से रहना चाहिए। अब आप हमको यह नसीहत देने लगे कि आप हराम की रोटी खाइए और भजन कीजिए। यह तो हम पहले ही कर रहे थे। बस, चिट्ठी लिखकर रख दी और वहाँ से चले गए।

मित्रो! हजरत इब्राहिम सारी जिंदगी अपनी मेहनत की रोटी खाते रहे और भगवान का नाम लेते रहे। वे मेहनत-मजदूरी की रोटी खाते और ईमानदारी से रहते थे। फालतू चीज अगर कोई बच जाती, तो मुनासिब लोगों में बाँट देते थे। बस, हो गया भजन, हो गई सिद्धि, हो गया चमत्कार। बेटे, तमीज से जिंदगी जीता नहीं है और बहाने बनाता है कि चमत्कार सिखा दीजिए और सिद्धियाँ सिखा दीजिए। ऐसे थोड़े ही होगा चमत्कार। बेटे, हजरत इब्राहिम मुसलिम धर्म के इतने बड़े संत हुए हैं कि उनको मुहम्मद साहब की तरीके से पहले जमाने का पैगंबर माना जाता है।

[क्रमशः समापन अगले अंक में]

अमेरिका की एक बूढ़ी औरत के पास एक खेत था, लेकिन उसकी भूमि दलदली थी—उसमें कुछ भी पैदावार नहीं हो सकती थी। उसके पास एक आदमी आया। उसने कहा—"तुम इस खेत का क्या करोगी, इसे मुझे दे दो। यहाँ तो केवल मेंढ़क ही रह सकते हैं।" उस आदमी की बात सुनकर बुढ़िया ने उस भूमि पर मेंढ़क ही पालने शुरू कर दिए। उसने इससे संबंधित तमाम जानकारियाँ हासिल कीं, धीरे-धीरे उसका काम इतना बढ़ गया कि उसने आस-पास की दलदल वाली भूमि खरीदकर एक बड़ा फार्म बना लिया और उसमें भी मेंढ़क पालन प्रारंभ कर दिया। दूर-दूर से उसके मेंढ़कों की माँग आने लगी। जल्दी ही बुढ़िया बहुत धनवान हो गई। जो अवसर को पहचानकर उसका सही उपयोग करते हैं, वे सफलता अवश्य अर्जित करते हैं।

विश्वविद्यालय परिसर से —185

वैश्विक संकट में नई उपलब्धियाँ रचता विश्वविद्यालय

कोरोना महामारी के संक्रमण के कारण जिस वैश्विक संकट के दौर से मानवता गुजर रही है, इन परिस्थितियों में विश्वविद्यालय के लिए यह आवश्यक हो गया था कि विश्वविद्यालय अपने परिसर के दायरे को और विस्तृत करे। चूँकि विश्वविद्यालय का भौगोलिक परिसर संक्रमण की अवधि में पूर्णरूपेण बंद रहा, इसलिए इस अवधि में सारी शैक्षणिक गतिविधियाँ ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से ही पूर्ण की जाती रहीं।

इस क्रम में सर्वप्रथम देव संस्कृति विश्वविद्यालय के अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों की सत्रांत परीक्षाएँ इसी **ऑनलाइन प्लेटफॉर्म** के माध्यम से ली गईं। सैकड़ों विद्यार्थियों ने इस माध्यम का उपयोग करते हुए अपने-अपने शहरों से विश्वविद्यालय की इन परीक्षाओं को संपन्न किया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा की गई इस पहल का सभी ने भावभरा स्वागत किया और इसे अन्य सभी शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक उदाहरण बताया।

इसी तरह से देव संस्कृति विश्वविद्यालय का शैक्षणिक सत्र भी ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से प्रारंभ हो गया। विश्वविद्यालय के 50 से ज्यादा पाठ्यक्रमों के विद्यार्थी अगस्त माह से ही अपनी शैक्षणिक जिम्मेदारियाँ इस माध्यम से पूर्ण करते रहे। इसी के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने एक और अभिनव पहल की, जिसको सभी के द्वारा अत्यंत सराहा गया एवं उसे एक नई परंपरा के रूप में देखा गया।

सभी परिचित हैं कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय केवल गायत्री परिजनों के भावभरे अनुदान से ही चलता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की समस्त गतिविधियों को करने हेतु न तो विश्वविद्यालय किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठन से आर्थिक सहायता प्राप्त करता है और न ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय का उद्देश्य किसी भी दृष्टि से आर्थिक उपार्जन के कार्य को संपन्न करना है। इसके बावजूद विश्वविद्यालय द्वारा विद्यार्थियों की अनुरक्षण राशि में महत्त्वपूर्ण घटोत्तरी की गई।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने महसूस किया कि विश्वविद्यालय के अनेक विद्यार्थी ऐसे परिवारों से आते हैं, जिनको अपनी दैनंदिन गतिविधियों को पूरा करने के लिए स्वयं ही सहायता की आवश्यकता पड़ती है। कोरोना संक्रमण के दिनों में वित्त-व्यवस्था पूर्णरूपेण बाधित रहने के कारण अनेक परिवारों में उपयुक्त आर्थिक संसाधन नहीं जुट सके, इसलिए बिना किसी के कहे विश्वविद्यालय प्रशासन ने अपनी स्वत:प्रेरणा से सभी विद्यार्थियों को अनुरक्षण राशि में 35 प्रतिशत की राहत प्रदान की।

गौरतलब है कि अनेक शैक्षणिक संस्थान, जिन्हें करोड़ों रुपये से ज्यादा का आर्थिक सहयोग प्राप्त होता है, उन्होंने भी इस तरह की कोई पहल नहीं की जबकि भावनाशील परिजनों के छोटे-छोटे किंतु सार्थक अनुदान से चलने वाले देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा की गई ये पहल इस सत्य को दरसाती है कि विश्वविद्यालय मानवीय संवेदनाओं के संरक्षण हेतु प्रतिबद्ध है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने विगत दिनों एक और महत्त्वपूर्ण शुरुआत की, जिसमें विश्वविद्यालय परिसर में एक राष्ट्रीयस्तर की खेल एकेडमी बनाने के लिए प्रयत्न आरंभ किए गए। इस क्रम में द्रोणाचार्य पुरस्कार विजेता श्री संजय भारद्वाज जी एवं विश्व कप विजेता यू-19 भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान श्री उन्मुक्त चंद देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे। उनके साथ वार्त्तालाप के बाद एक ऐसी एकेडमी यहाँ प्रारंभ करने पर सहमति बनी, जो न केवल उत्तराखंड और भारत, बल्कि संपूर्ण गायत्री परिवार का नाम रोशन कर सके।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने के.औ.सु.ब. के साथ मिलकर वन महोत्सव का कार्यक्रम संपन्न किया। उल्लेखनीय है कि केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल द्वारा एक करोड़ वृक्ष लगाने का संकल्प लिया गया है, जिसमें 6 हजार वृक्ष हरिद्वार परिसर में लगाना प्रस्तावित है। इस हेतु आयोजित कार्यक्रम में उनके कमान्डेंट एवं प्रतिकुलपति उपस्थित रहे। सभी ने इस हेतु विश्वविद्यालय के कार्यों की सराहना की। ❑

अपनों से अपनी बात

इस कुत्सित आकांक्षा से दूर रहें लोकसेवी

समाजसेवा व लोक-उत्थान के कार्यक्षेत्र में बड़प्पन का पैमाना व्यक्ति के व्यक्तित्व से तय होता है—अन्य किसी उपक्रम से नहीं। युगशिल्पियों की योग्यता, सामर्थ्य, वरिष्ठता का निर्धारण—उनकी बुद्धि, धन, प्रभाव, प्रतिष्ठा, आयु इत्यादि के आधार पर नहीं किया जा सकता है, वरन यह तो उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता पर निर्भर करता है।

व्यक्तित्व के परिमार्जन की प्रक्रिया को लोग खेल समझकर न मानने के लिए भी स्वतंत्र हैं, परंतु ऐसा करने से सर्वत्र विद्यमान प्रकृति—परमेश्वर की न्याय-प्रणाली की आँखों में धूल झोंकना संभव नहीं बन पाता है। वहाँ तो पात्रता का ही सिक्का चलता है और उसी की कसौटी पर व्यक्ति, पहले से ज्यादा अनुदानों को, विभूतियों को अर्जित कर पाता है। जो व्यक्तित्व परिष्कार के मूल सिद्धांतों का जितनी गंभीरता के साथ पालन करने का प्रयत्न करते हैं, वे ही मूर्द्धन्य महामानव कहलाते हैं व आत्मिक विभूतियों के स्वामी बनते हैं।

लोक-कल्याण के क्षेत्र में निस्पृहता व विनम्रता ही व्यक्तित्व के परिशोधन की कसौटी माने जा सकते हैं। जिनमें इस पथ को छोड़कर स्वयं को व्यर्थ ही बड़ा मानने की व बड़ा दिखाने की ललक होती है उन्हें न न्याय सूझता है, न नीति दिखाई पड़ती है और न औचित्य-अनौचित्य का भाव रहता है।

जिन्हें यह लगता है कि जितनी जल्दी बन पड़े ज्यादा-से-ज्यादा बटोर लिया जाए और उसके लिए न स्वयं की पात्रता का विकास किया जाए और न ही मिल गए का मूल्य चुकाया जाए तो ऐसे छल-छद्म का आश्रय लेकर चलने वाले लोग औंधे मुँह गिरते हैं और जग-उपहास के पात्र बनते हैं।

लोकसेवा का क्षेत्र त्याग-तप-तितिक्षा का क्षेत्र है—स्थिति, पद, प्रशंसा के लिए इस क्षेत्र में आने की जरूरत नहीं है। यदि पद-प्रतिष्ठा की चाह थी तो सेवा जैसे परिष्कार के पथ को क्यों चुना जाए? भीड़ जुटाने का काम सर्कस-मजमा लगाकर के भी किया जा सकता है। सेवा का कार्य तो निस्पृह-विनम्र-शालीन व्यक्तित्व के लोगों के लिए सुरक्षित छोड़ा जाना चाहिए।

यदि बड़े बनने की महत्त्वाकांक्षा लोकसेवा के क्षेत्र में निरत व्यक्तियों में आ घुसे तो यह व्यक्ति तो व्यक्ति; पूरे संगठन के पतन का कारण बन बैठती है। इस महत्त्वाकांक्षा ने भगवान कृष्ण के वंश से लेकर मुगलों के खानदान तक में किसी को नहीं छोड़ा तो सामान्य मनुष्य को पथभ्रष्ट होते कितनी देर लगती है। इसीलिए महर्षि व्यास ने महाभारत में स्पष्ट लिखा है—

बहवः यत्र नेतारः बहवः मानकांक्षिणः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति स दल अवसीदति॥

अर्थात जहाँ सभी के मन में नेता बनने की आकांक्षा, पद की लिप्सा हो वो दल अंततः नष्ट होकर रहता है।

युगशिल्पियों को तो इस दुर्गुण से बीमारी समझकर दूर रहने की आवश्यकता है। गायत्री परिवार का गठन विश्व को भयावह विभीषिकाओं के गर्त में जाने से रोकने के लिए हुआ है और यदि हमारी ही ऊर्जा, हमारा ही समय, हमारा ही पराक्रम मात्र अपनी स्वार्थपूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने में लगने लगा, अपने साथियों को पीछे धकेलने में, अपना चेहरा चमकाने जैसे निरर्थक उद्देश्यों में लगने लगा तो हम स्वयं को व इस दैवी योजना को नष्ट-भ्रष्ट करने के अतिरिक्त अन्य कुछ हासिल नहीं कर सकेंगे। गायत्री परिजनों को तो इस खतरे को एक आसुरी आयोजन मान इससे दूरी बनाने की आवश्यकता है।

महामानवों का परिचय उनकी सज्जनता, विनम्रता से मिलता है। भगवान श्रीकृष्ण ने राजसूय यज्ञ के दौरान आगंतुकों के पैर धोने का कार्य अपने हाथों में लिया था। राजा दिलीप ने सुरक्षाकर्मी की जिम्मेदारी अपने लिए तय की थी। चाणक्य महात्मा होने के बाद भी साधारण कुटी बनाकर रहते रहे। परमपूज्य गुरुदेव से मिलने वाले जानते ही हैं कि वे सामान्य से व्यक्ति से मिलते समय भी उसको पूर्ण आदर व सम्मान देते थे।

इतिहास गवाह है कि सज्जनता-विनम्रता-सादगी अपनाने वाले कभी घाटे में नहीं रहे व सदा लोकसम्मान व दैवी

अनुदानों के अधिकारी बनते हैं। जो लोग परमपूज्य गुरुदेव के सृजनसैनिकों के रूप में इस पुनीत क्षेत्र में उतरे हैं, उन्हें शासकीय व्यवस्था जैसे ठाठ-बाट, वैभव, पद, पैसे की चाह को वैसे की तिलांजलि दे देनी चाहिए, जैसी इस पथ पर चलने वालों से अपेक्षित है। उस प्रकार की चाहत हमें शोभा नहीं देती।

जो जितना बड़ा हो, उसे उतने ही ज्यादा को धारण करने की आवश्यकता है। गायत्री परिजन होने के लिए निरहंकारिता व नम्रता की योग्यता ही अनिवार्य है। अहंकार का प्रदर्शन तो हमारे लिए उसी तरह त्याज्य है, जैसे लोलुपता भरा आचरण, कोषाध्यक्ष को शोभा नहीं देता है। हममें से कोई अहंकार प्रदर्शित न करे। छोटा बनकर रहे व मिशन के मर्यादा-अनुशासन का पालन व्रतधारण के भाव से करे।

शिक्षकों की पदोन्नति उनकी डिग्री के आधार पर होती है। शासकीय पदों में नियुक्ति व पदोन्नति अनुभव के आधार पर होती है। लोकसेवा के क्षेत्र में सदाशयता व नम्रता को ही पैमाना माना गया है। हम पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी के चरणसेवक बनने से पूर्व क्या थे—इसका कोई मूल्य-महत्त्व नहीं रह जाता है। संन्यास लेते समय अपने पद, गौरव सबकी तिलांजलि दी जाती है तो लोकसेवा का हमारा यह महान पथ उस परंपरा से छोटा कैसे हो सकता है?

यहाँ तो विनम्रता का महत्त्व और ज्यादा हो जाता है। स्मरण रखा जाए कि वरिष्ठता, विनम्रता से ही तय होती है, बाहर के आडंबरों से नहीं। फलों से डालियाँ भर जाने पर आम का वृक्ष धरती की ओर झुक चलता है। अकड़ना तो अरंड के पेड़ को ही शोभा देता है। खाली खेत में डंठल की तरह खड़े रहकर वह अपने को भले से कल्पवृक्ष मान बैठे, परंतु सत्यता को जानने वाले उसकी इस मूर्खता पर मुस्कराकर निकल जाते हैं।

साधु-ब्राह्मण, संत-सुधारक परंपरा में अपरिग्रह, सादगी, मितव्ययिता को ही वरिष्ठता का प्रतीक माना गया है। जिन्हें विलासिता का शौक था, जिनके चिंतन में अहंकार, बेकाबू घोड़े की तरह दौड़ता दिखता है, उन्हें इस क्षेत्र में आने की आवश्यकता न थी। यहाँ भिक्षाटन करने की, द्वार-द्वार पर खड़े होकर रोटी माँगने की और ऐसा करते हुए अपने अहंकार को गलाने की साधना करने वाले ही चल पाते थे।

आज भी यह नियम बदला नहीं है। बिना अहंकार को गलाए, विनम्रता को धारण किए, नम्रता को अपना सहयोगी बनाएँ—आध्यात्मिक उत्कृष्टता को धारण कर पाना संभव नहीं हो पाता है। गायत्री परिजनों को इस बीमारी से दूर ही रहने की आवश्यकता है। कर्त्तव्यपालन को हम सर्वोपरि मानें। निरहंकारिता, निस्पृहता, नम्रता हमारे जीवन का मूलमंत्र बनें तो ही हम पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी के सही अर्थों में लीलासहचर कहला सकेंगे। ❑

एक शिष्य ने आत्मज्ञान का शिक्षण लिया। वह अपने गुरु से बोला—"एकांत में बैठकर आत्मचिंतन करने में जो आनंद है, वह कहीं और नहीं। हे गुरुवर! मैं उच्चस्तरीय साधना हेतु हिमालय जाना चाहता हूँ।" गुरु बोले—"जिस राष्ट्र के नागरिक भटक रहे हों, वहाँ के प्रबुद्ध व्यक्ति मात्र अपने आत्मकल्याण की, स्वार्थ की बातें सोचें यह अनैतिक है। ईश्वर को पाना है तो प्रकाश की साधना करो। जो अंधकार में भटक गए हैं, उन्हें ज्ञान का प्रकाश दो। चारों ओर अर्जित संपदा बिखेर दो।" शिष्य मानवता के देवदूत के रूप में अग्रगामियों की टोली में सम्मिलित हो गया।

नमन हमारा

दुःख देख आदमी का,
संकट सकल जमीं का,
सेवा जिन्हें सुहाई, उनको नमन हमारा।

नर्सों, चिकित्सकों ने माहौल यूँ सँभाला,
खुद आग में उन्होंने ज्यों अपना हाथ डाला,
भोजन, भजन, शयन की,
सुविधा, सुखों, स्वजन की,
हर याद है भुलाई, उनको नमन हमारा।
सेवा जिन्हें सुहाई, उनको नमन हमारा।

भावों में आदमी के आई है यूँ गिरावट,
मंदिर व मस्जिदों में भी है न वह इबादत,
जो आज अस्पतालों,
सन्नद्ध पुलिस वालों,
में दे रही दिखाई, उनको नमन हमारा।
सेवा जिन्हें सुहाई, उनको नमन हमारा।

रक्षा में जो हमारी जाग्रत रहे निरंतर,
होते जगह-जगह पर हैं आक्रमण, उन्हीं पर,
ऐसे ही आक्रमण में,
आवेशपूर्ण क्षण में,
जिनकी कटी कलाई, उनको नमन हमारा।
सेवा जिन्हें सुहाई, उनको नमन हमारा।

हर द्वार बंद है जब, परिवार हैं घरों में,
होती किसी तरफ भी हलचल न है स्वरों में,
सुनसान बीच जाकर,
कर्त्तव्य जो निभाकर,
करते सतत सफाई, उनको नमन हमारा।
सेवा जिन्हें सुहाई, उनको नमन हमारा।

—शचीन्द्र भटनागर

GPYG - KOLKATA (गायत्री परिवार युवा मंडल)

से संबद्ध कर्मठ कार्यकर्त्ताओं द्वारा प्रायः 150 सप्ताह से निरंतर चलाया जा रहा है
शनिवासरीय स्वच्छता–श्रमदान अभियान

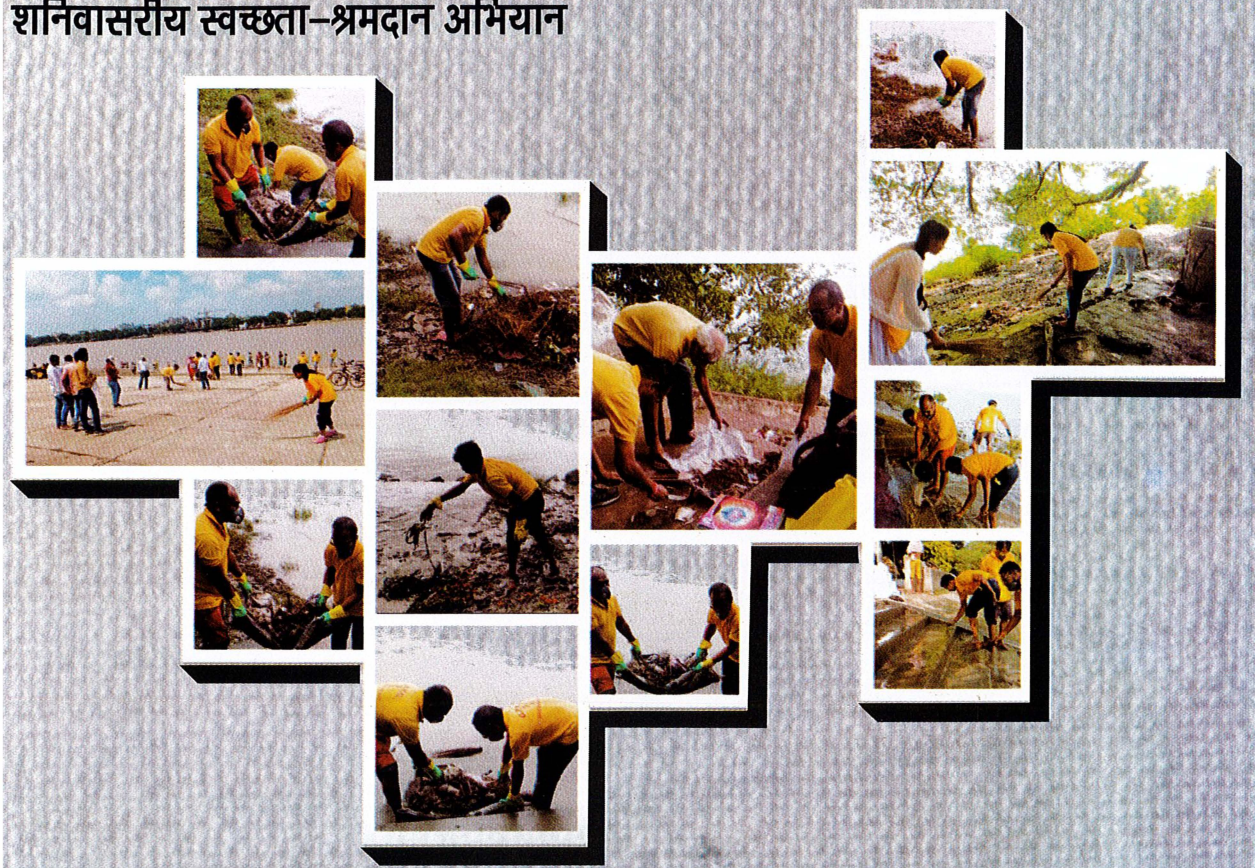

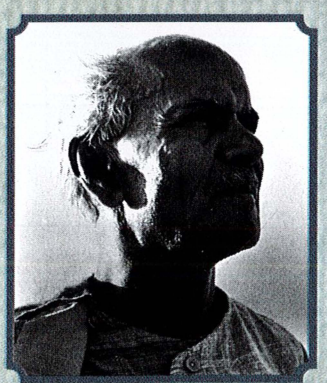

"गंदगी मनुष्य की आत्मा का ही नहीं, व्यक्तित्व का भी पतन कर देती है। गंदगी से बचना, उसे छोड़ना और हर स्थान से उसे दूर करना, मनुष्य का सहज धर्म है। उसे अपने इस धर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। क्या भौतिक और क्या आध्यात्मिक, किसी प्रकार का भी विकास करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, स्वच्छता उनमें सर्वोपरि है।"

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-10-2020
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020

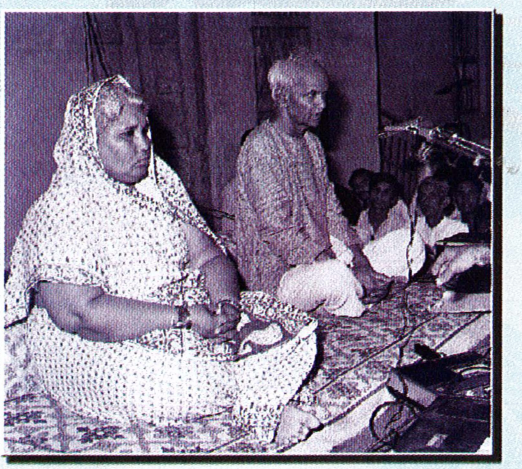

"असंख्यों बार यह परीक्षण हो चुके हैं कि दुष्टता किसी के लिए भी लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। जिसने भी उसे अपनाया वह घाटे में रहा और वातावरण दूषित बना। अब यह परीक्षण आगे भी चलते रहने से कोई लाभ नहीं। हम अपना जीवन इसी पिसे को पीसने में–परखे को परखने में न गँवाएँ तो ही ठीक है। अनीति को अपनाकर सुख की आकांक्षा पूर्ण करना किसी के लिए भी संभव नहीं हो सकता तो हमारे लिए ही अनहोनी बात संभव कैसे होगी?"

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org